

DDCE Utkal University

हिंदी (एम.ए.)

M.A. (Hindi)

Semester - IV

PAPER - XIV

दलित विमर्श

लेखक

डॉ. विजय कुमार महांति

**Certified that Syllabus & Courses of
Study have been prepared
According to the UGC guidelines**

DDCE UTKAL UNIVERSITY

M.A. (Hindi)

Semester - IV

PAPER - XIV

दलित विमर्श

लेखक

डॉ. विजय कुमार महांति

DDCE UTKAL UNIVERSITY

M.A. (Hindi)

PAPER - XIV

Semester - IV

COURSES OF STUDY

दलित विमर्श

- Unit - I** - दलित साहित्य - पृष्ठभूमि
भारतीय दलित साहित्य, हिन्दी दलित साहित्य
- Unit - II** - उपन्यास
पाठ्यपुस्तक : धरती धन न अपना - जगदीश चंद्र
- Unit - III** - आत्मकथा
पाठ्यपुस्तक : i) झूठन - ओमप्रकाश वाल्मीकि
ii) तिरस्कृत - सूरजपाल चौहान

अंक विभाजन :

तीन	आलोचनात्मक प्रश्न	12×3 = 36
तीन	लघूत्तरी प्रश्न	8×3 = 24
दो	टिप्पणी मूलक प्रश्न	5 × 2 = 10

कुल = 70

सत्रीय कार्य = 30

कुल अंक = 100

पाठ्यक्रम परिचय

एम.ए. का पत्र संख्या 14 दलित विमर्श का पाठ्यक्रम है । इस पाठ्यक्रम की प्रथम इकाई में आप दलित साहित्य की पृष्ठभूमि भारतीय दलित साहित्य और हिंदी दलित साहित्य का अध्ययन करेंगे । इसमें आपको दलित साहित्य, दलित शब्द का अर्थ, दलित साहित्य का प्रेरणास्रोत, दलित साहित्य का स्वरूप फिर भारतीय साहित्य एवं इसके अंतर्गत मराठी, तेलुगु और अन्य कुछ भारतीय भाषाओं के दलित साहित्य पर संक्षिप्त जानकारी प्राप्त होगी ।

तत् पश्चात् हिंदी साहित्य और उसके प्रसिद्ध और उनकी साहित्यिक कृतियों (कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा) आदि पर की गई चर्चा से आपको हिंदी दलित साहित्य पर बहुत सी जानकारी प्राप्त होगी ।

UNIT - I

दलित विमर्श

UNIT - I

- 1.1 पृष्ठभूमि
- 1.2 प्रेरणा स्रोत
- 1.3 स्वरूप
- 1.4 भारतीय दलित साहित्य
- 1.5 हिंदी दलित साहित्य

Unit - I

दलित साहित्य

1.1 पृष्ठभूमि :

विविध धर्मावलवियों का विशाल देश है भारत । यहाँ हिंदू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी, सिख जैसे कई धर्मों के लोग सदियों से निवास करते आ रहे हैं । पूरे देश में हिन्दुओं की संख्या सबसे अधिक है । शुरू से इनका वर्चस्व रहा है । बहु प्राचीन काल से हिन्दुओं में जटिल वर्ण व्यवस्था प्रचलित है । यह वर्णव्यवस्था वैदिक काल से शुरू हुई थी । उत्तर वैदिक काल आते आते इस व्यवस्था ने काफी जटिल रूप धारण कर लिया । प्राचीन वैदिक कालीन वर्णव्यवस्था ने हिन्दु समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, शुद्र और वैश्य इन चार वर्णों में विभाजित किया था । इस वर्ण व्यवस्था के अनुसार समाज में ब्राह्मण को श्रेष्ठत्व प्रदान करने के साथ साथ सामाजिक स्तर पर उन्हें प्रभावशाली बनाया गया । फलतः समय की गति के अनुसार समाज में ब्राह्मणों का प्राधान्य बढ़ने लगा । शुद्रों को इन तीन जातियों के सेवा करने वाला सेवक माना गया । धीरे-धीरे शुद्रों में विविध जाति -उपजातियों की सृष्टि हुई । इन जाति-उपजातियों के लोगों को दलित माना गया । इन्हें वेदाध्ययन से वंचित किया गया ।

वर्ण भेद की यह कुत्सित भावना इतना भयंकर रूप धारण की गई कि निम्नवर्गों के लोगों की छाया का स्पर्श भी पाप समझा जाने लगा । क्रमशः अवहेलित जाति, जनजाति यानी पिछड़े हुए, रौंदे हुए लोगों का जीना दूभर हो गया । वर्णाश्रम पद्धति में शूद्र इस दलित वर्ग में अनुसूचित जाति, जनजाति, मजदूर, भूमिहीन, गरीब किसान सभी को अंतर्भुक्त किया गया । इन सबको दलित माना गया । दलित शब्द का अर्थ -

दलित शब्द का अर्थ है जिसका दलन या उत्पीड़न किया गया हो । दलित शब्द का अर्थ और परित्याजि पर प्रकाश डालते हुए डॉ. आरती झा ने कहा है - “दलित शब्द का सामान्य अर्थ है - दरिद्र और उत्पीड़न । इसका अर्थ दबा, कुचला, अपमानित और प्रताड़ित प्राणी होता है । आज ‘दलित’ का अर्थ अनुसूचित जातियों और जन जातियों के रूढ़ अर्थ में होने लगा है । जिसका दलन व दमन हुआ हो, दबाया गया हो, जो उत्पीड़न, शोषित, सताया, गिराया, उपेक्षित, घृणित, रौंदा, मसला, कुचला,

विनष्ट, मर्दित, पस्त, हत्साहित और वंचित हो वह दलित है । दलित किसी जाति व धर्म का कोई शब्द नहीं है । वह कोई भी हो सकता है । शुद्र हो, स्त्री हो या अन्य कोई भी हो ।”¹

महाराष्ट्र में सन् 1970 के दशक में दलित पंथर राजनीतिक दल ने ‘दलित शब्द का सबसे अधिक प्रचार किया । तब से दलित शब्द का महत्व बढ़ गया । लोग दलित शब्द को केवल अनुसूचित जन जातियों तक सीमित करते हैं, परंतु इनका यह विचार तर्क संगत नहीं है । इस संबंध में डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी का कहना है -“ दलित एक संवेदन है विचार , जिसका अर्थ दबाया गया मनुष्य, किसी भी जाति, वर्ण, धर्म, मन एवं भौगोलिक क्षेत्र का हो दलित है ।”² आगे चल कर दलित शब्द को लेकर कई विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से राय प्रकट की है । केवल भारती ने अपना विचार प्रकट करते हुए दलित शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है । उनके अनुसार -“ दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता नियम लागू किया गया है । जिसे कठोर गंदे कार्य करने के लिए वाध्य किया गया । जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया, सिर्फ वही दलित है ।” दलित सर्वहारा जैसा पीड़ित है । वह जीवन भर अवहेलित जीवन जीता है । पर दलित और सर्वहारा में थोड़ा बहुत अन्तर है । इस बात को स्पष्ट करने के लिए दलित साहित्यकार मोहन दास नैमिशराय का वक्तव्य उल्लेखनीय है । इनके विचारों में -“दलित और सर्वहारा इन दो शब्दों में पर्याप्त भेद है । दलित की व्याप्ति अधिक है तो सर्वहारा की सीमित । दलित के अंतर्गत सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक शोषण का अंतर्भाव होता है तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक सीमित है ।”³ तब दलितों को आजादी नहीं थी । उन्हें गुलामी में जीवन बिताना पड़ता था । सवर्ण समाज के लोगों के शोषण के परिणाम स्वरूप इन्हें हवा में सांस लेना भी मुश्किल था । गांव में भंगी, चमारों की सामाजिक स्थिति कुत्तों से भी गयी गुजरी थी । नीच जाति की औरतों को कुँए से पानी तक भरने नहीं दिया जाता था । गांव में ऊँच-नीच का भेदभाव तीव्र दिखाई देता था । डोम, भंगी, चमार जैसी जाति में जन्म लेना पाप समझा जा रहा था । जगदीश चन्द्र ने ‘धरती धन न अपना’ उपन्यास में बड़ी बारीकी से इसका वर्णन किया है । पैसा होने के बावजूद चमार काली चाची के लिए पाव भर दूध नहीं जुटा पाया है । चमारों को दूध बेचना चौधरियों के शान के खिलाफ है । छष्पू शाहक की बात सुनकर हरिसिंह भड़क उठा, “तेरी अक्ल

-
1. डॉ. आरती झा का ‘भारत में दलित साहित्य एवं दलित चेतना’ लेख, नव विकाष(तोषविशेषक) दि. 2012, पृ. -60
 2. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी का लेख, सुमन लिपि, माषिक, बम्बई(फ.-मा.)1944, पृ. 5
 3. उत्कृष्ट रविशंकर सोनकर का लेख ‘दलित साहित्य : चिन्तन का आधार’ नवनिकष शोध विशेषांक -2

ठिकाने है कि नहीं ? गरीब हूँ तो क्या हुआ, चौधरी तो हूँ, चमार के हाथ दूध बेचूंगा तो गांव वाले क्या कहेंगे ?” (धरती धन न अपना -पृ.-165) इतना ही नहीं उन दिनों दलितों को अस्पृश्य मानकर इन्हें समाज और धर्म से बहिष्कृत किया जाता रहा था । दलितों का मंदिर प्रवेश विवर्जित सा दलित बच्चों के विद्योपार्जन पर रोक थी । स्कूल में दलित बच्चों का सवर्ण विद्यार्थियों और शिक्षकों से सताया जा रहा था । दलित साहित्यकार ओमप्रकाश बाल्मीकि ने अपनी आत्मकथा ‘जूठन’ में उन दिनों पर स्कूल के हेडमास्टर से किये गये हमले का मार्मिक चित्र उभार कर लिखा है - चीखकर मास्टरजी ने कहा - ‘ जा लगा पूरे मैदान में झाड़ू नहीं तो गांड में मिर्ची डाल के स्कूल से बाहर निकाल दूंगा । ब्राह्मणवाद के कारण ही समाज में दलितों को तमाम सांस्कृतिक -धार्मिक अनुष्ठानों से वंचित किया जाता था । वस्तुतः यह तत्कालीन समाज की व्यवस्था का हिस्सा था ।

तत्कालीन भारत में जाति व्यवस्था का अमानवीय रूप समाज में भेद-भाव उत्पन्न करने के साथ-साथ अनेक प्रतिभाओं के विनाश का कारण बनना था । जातिवाद, भयावह स्थानियों से समाज में प्रेम और भाईचारे के बदले घृणा और अशांति हमेशा बनी रहती थी ।

1.2 दलित साहित्य के प्रेरणा स्रोत :

भारतीय समाज में प्रधानतः हिंदू समाज है । छुआछूत की भावना मुख्यतः हिंदुओं में रही है । चार वर्ण की स्थापना तो समाज को जोड़ने हेतु की गई । परंतु कालक्रम में वह बांटने में लग गई । मध्यकाल में निर्गण शाखा के अनेक कवि रैदास, पलटू, कबीर आदि ने वर्ण व्यवस्था और जाति प्रथा पर गंभीर चोट की है । जबुन्हें उपासना का अधिकार न रहा, प्रवेशाधिकार न रहा, तो ईश्वर को मन के भीतर ढूंढ लिया । पा भी लिया । रैदास तो कहते हैं -

“का मथरा का द्वारका, का कासी हरद्वार ।

रैदास खोजा दिल अपना, तऊ मिलिया दलदार ।”

गहरे अतीत में जायें तो देखेंगे कि सिद्ध -नाथ कवि इस भेदकारी परंपरा के विरुद्ध खड़े हुए थे । चौरासी सिद्धों में साठ तो शूद्र थे । वैसे ही सिद्धों में अनेक इसी वर्ण के थे । इनकी प्रखर वाणी ने पहली बार समाज में वर्णभेद के प्रति चेतना जगाई । इनके तर्क और समता के उदाहरण समाज को इस नीति में बदलाव के प्रति जागरूक कर सके । आध्यात्मिक भाव को भौतिक उपलब्धि से ऊपर महत्व देने के

डॉ. आरती झा का लेख ‘भारत में दलित साहित्य एवं दलित चेतना’ निकप(शोध-विशेषांक) दि. 2012, पृ. 61

कारण वे सब को स्वीकार्य हो सके । भेद वाली अवैज्ञानिक भावना के प्रति दलितों को जागृति की प्रेरणा मिली ।

प्रत्यक्ष रूप में स्वामी दयानन्द इस दर्द को समझ कर उन्हें वेदों का अधिकार दिया, यज्ञादि का अधिकार दिया एवं जनेऊ धारण की स्वीकृति दी । उनमें दलितों के प्रति गहरी सचेतनता स्पष्ट दिखी । माता प्रसाद लिखते हैं : संतों के विचारों से दलित जाति को प्रेरणा मिली ।

उनमें आत्मविश्वास जागृत हुआ । उसी तरह गांधीजी ने शूद्रों को 'हरिजन' संज्ञा देकर अपनाया । गुलामी के संघर्ष में इनका आंतरिक समर्थन लिया । गांधी की मंशा में राजनैतिक षडयंत्र ढूंढना, सत्य और अहिंसा के पुजारी के साथ अन्याय होगा । हरिजन उद्धार का उनका अभियान आंदोलन काफी आंतरिक था । इसके बाद इस दिशा में अम्बेडकर की विचारधारा ने बड़े समाज को जगाया । संविधान में आरक्षण का मुद्दा जोड़कर हरिजनों के अन्याय पर मलहम लगाया गया । इस प्रकार एक लंबे समय बाद कानून सम्मत आंदोलन और सकारात्मक सचेतनता भरी ।

दलित साहित्य लिखे जाने से पहले दलितों के प्रति संवेदना और उनमें चेतना उत्पन्न करने का काम भारत की विविध भाषाओं के साहित्यकारों ने अपनी-अपनी साहित्यिक कृतियों के माध्यम से थोड़ा बहुत किया था । लेकिन यह कहना समीचीन होगा कि वास्तव में दलितों में चेतना उत्पन्न करना और दलित साहित्य की रचना करने में प्रेरणा प्रदान करने वालों में जिनकी प्रमुख देन थी उनमें प्रमुख हैं गौतम बुद्ध, संत कवि कबीर, रैदास एवं दलितों के उद्धार कर्ता माने जाने वाले भारत रत्न अम्बेडकर । डॉ. आरती झा ने अपने लेख में इस संदर्भ में लिखा है - "दलित साहित्य के मूल में बौद्ध चिंतन, जोतिबाफूले और अम्बेडकर के विचार, नीग्रो साहित्य लेखन और अश्वेतमहिला लेखन में दिखाई देता है । कबीर, रैदास जैसे दलित संत इनकी प्रेरणा हैं । रैदास दलित चेतना के प्रमुख कवि हुए, जो कहते हैं -

“रैदास एक ही बूंद सों, सब ही भयो वित्थार
मूरिख हैं जो करत है, बरन अबरन बिचार ।”

जन्म आधार पर जाति वर्ण का छोर विरोध किया है । ये अपना निर्णय अब स्वयं करते हैं ।

5. ओमप्रकाश बाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र , 2014, पृ. -32

6. डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान : दलित साहित्य के
प्रेरणास्रोत, 2012, पृ. 87

हिंदी काव्य में दलित काव्य धारा - माता प्रसाद , पृ. - ४७

1990 के दशक से दलित साहित्य ने हिंदी में दस्तक दी । कांशीराम द्वारा 'डी.एस.-4' और 'बसपा' की स्थापना से दलित साहित्य प्रभावित हुआ । 1990-91 के मंडल कमिशन ने दलित साहित्य को गति प्रदान की । राजेन्द्र यादव की 'हंस' पत्रिका और रमणिका गुप्ता की 'युद्ध रत आम आदमी' पत्रिका के द्वारा अनेक दलित लेख के क्षेत्र में आगे आये । कई दलित साहित्य सम्मेलनों द्वारा भी समकालीन दलित चेतना का विकास हुआ । दलित साहित्य द्वारा अपने समय और समाज का चित्रण पूरी सच्चाई और यथार्थवादी दृष्टि से किया गया ।''⁴

अधिकांश दलित साहित्यकार दलित चेतना और दलितों की अभिव्यजन में अम्बेडकर की मुख्य प्रेरणा स्रोत मानते हैं । वस्तुतः महाराष्ट्र में कठोर ब्राह्मणवाद से सदियों से पीड़ित, अवहेलित, घृणित दलितों के अंधकार पूर्ण जीवन में अम्बेडकर ने ही रोशनी के दीये जलाये । उनमें सामाजिक अन्याय और अनीति के खिलाफ आवाज उठाने की हिम्मत जगायी । प्रतिभाधर अवहेलित दलितों की सुषुप्त प्रतिभा का परिप्रकाश भर समाज में उन्हें सवर्णों की तरह सीना तानकर चलना सिखाया । स्वातंत्र्योत्तर भारत में दलितों में जो सुधार आया है, दलित साहित्य में जो व्यापकता आई है । इसमें सबसे अधिक श्रेय अम्बेडकरजी को ही है । ओमप्रकाश बाल्मीकि ने इस संदर्भ में अपनी पुस्तक 'दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' में कहा है - " दलितों की संस्कृति में गुण -दोष हो सकते हैं लेकिन इतना तो निश्चित है, कल का दलित और आज का दलित भिन्न है । यही अन्तर सांस्कृतिक निष्ठा का निर्माण कर रहा है । देवी -देवताओं में श्रद्धा भाव, मंदिर, पुनर्जन्म, मनुष्य और मनुष्य के बीच घृणा भाव उत्पन्न करने वाले धर्म शास्त्र, ग्रंथ, महाकाव्य, नर्क-स्वर्ग, मनुष्य को गुलाम बनाने वाले प्रपंच, कर्मकांड को नकारते हुए आज का दलित अपनी अलग पहचान और संस्कृति के मूल आधार हैं । इन सवालों से ही दलित चेतना का उद्गम है और डॉ. अम्बेडकर के जीवन-दर्शन, सामाजिक संघर्ष से ऊर्जा पाकर साहित्यिक अभिव्यक्ति में परिवर्तन हुआ है ।''⁵

डॉ. अम्बेडकर ने अपने जीवन काल में 'दी अनटचेबल्स, हू आर दे ? एण्ड वई दे बीकेम अनटचेबल्स', बुद्ध एण्ड हिज धम्म, व्हाट कांग्रेस एण्ड गांधी हैव इन टू दी अनटचेबल्स ?, स्टेटस एण्ड माधनरटीज, आदि बारह पुस्तकों की रचना की । दलितों पर अम्बेडकर के जीवन दर्शन का गहरा प्रभाव पड़ा । खासकर मराठी भाषा में लिखी गई अम्बेडकर की आत्मकथा 'आयी कसा झाली' (मैं

7a. कंवल भारती -दलित साहित्य की अवधारणा

8. डॉ. दयानन्द बटोही, साहित्य में दलित चेतना, लेख, पश्चन्ती त्रैमासिक, अ. -

जू.1998 , पृ. -129

कैसे बना) दलित लेखकों में आत्मकथा लिखने में काफी प्रेरणा प्रदान की। डा. एन. सिंह के अनुसार - 'दलित साहित्य का साहित्य और विचारधारा ही है। सभी भाषाओं के दलित लेखक एकमत से इसे स्वीकार करते हैं।'⁶ अम्बेडकर की दलित सामाजिक क्रांति की प्रेरणा से प्रभावित होकर 1950 में महाराष्ट्र में दलित साहित्य संघ की स्थापना हुई। इनके बाद सन् १९७० के दशक में दलित पंथर ना मक राजनीतिक दल ने दलित शब्द का सबसे अधिक प्रचार-प्रसार किया। परिणाम स्वरूप मराठी भाषा में सबसे पहले दलित साहित्य लेखन का श्रीगणेश हुआ।

1.3 दलित साहित्य का स्वरूप :

दलित साहित्य दलितों में जीवन और उनकी समस्याओं को केन्द्र में रख कर दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य है। वास्तव में देखा जाय तो दलित साहित्य सामाजिक अन्याय के विरुद्ध विद्रोह और आक्रोश है। यदि दलित समस्याओं पर लिखता है तो उसमें सहानुभूति, यदि गैर-दलित लेखक दलित साहित्य की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए कुछ दलित लेखकों के विचार पर ध्यान देना जरूरी है। दलित साहित्य के स्वरूप का रेखांकन करते हुए कुंवलभारती ने लिखा है - "दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को स्थापित किया है, अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उसीकी अभिव्यक्ति करता है.... यह कला के लिए कला का नहीं बल्कि जीवन का ओर जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।"⁷ यह कहना तर्क संगत है कि जीवन भर सामाजिक विधि व्यवस्था से पीड़ित अछूत या नीच कहे जाने वाले लोगों में सदियों से संचित विद्रोह की भावना दलित साहित्य में दलितों की लेखनी से भड़क उठी है। दलित साहित्य की अवधारणा पर अपना विचार विशिष्ट दलित साहित्यकार डॉ. दयानन्द बटोही में अनुरूप भावना पाई जाती है। उनके शब्दों में - "दलित साहित्य दलितों की चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इसमें दलित मानवता का स्वर है। एक नकार है। एक विद्रोह है। यह विद्रोह उस व्यवस्था के प्रति है जो सदियों से दलितों का शोषण कर लाभ की स्थिति में है।"⁸ दलित साहित्य में गांवों का ज्यादातर वर्णन देखने को मिलता है। हर गांव में दलितों की बस्ती है। दलितों की बस्तियाँ प्रायशः गांव के बाहर ही होती हैं। इनके लिए अलग कुँआ, अलग श्मशान भी होता है। इससे गांव में दलितों

7. शरण कुमार लिंष्मते : हंस, जनवरी-फरवरी 1919, पृ. 53

8. डॉ. परुषोत्तम सत्यप्रेमी, गांधी दर्शन की प्रासंगिता, पृ. 23

के प्रति अन्य सवर्ण जातियों का मनोभाव स्पष्ट हो जाता है । दलित साहित्य शरण कुमार ने हंस पत्रिका में लिखा है - “दलित साहित्य का जन्म अस्पृश्यता की कोख से हुआ है ।” इसी बात को स्पष्ट करते हुए वे आगे भी कहते हैं कि दलितों की परेशानी, गुलामी, पारिवारिक विघटन, दुःख, गरीबी और उपेक्षापूर्ण जीवन का वास्तविक चित्रण करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है । पीड़ा और आह का उदात्त स्वरूप अर्थात् दलित साहित्य है ।”⁷ दलित साहित्यकारों का मानना है कि एक दलित साहित्यकार ही अपने जीवनाभव को लेकर दलित साहित्य लिख सकता है । दलित साहित्य दलितों को हृदयहीन ब्राह्मणवादी वर्णव्यवस्था के भेदभाव से मुक्ति दिलाने के लिए लिखा जाता है । दलितों को आज भी गैर दलित की सहानुभूति एवं करुणा में बहुत कम विश्वास है । नीलम सिंह द्वारा प्रस्तुत ‘दलित विमर्श : सिद्धांत - स्वरूप - प्रासंगिता’ लेख में भग्न सिंह से कही गई बात इस सत्य को परिपुष्ट करती है ।

“उस समय मालवीय जी जैसे बड़े समाज सुधारक, अछूतों के बड़े प्रेमी और न जाने क्या - क्या । पहले एक मेहतर के हाथों गले में हार डलवा लेते हैं लेकिन कपड़ों सहित स्नान किये बिना स्वयं को अशुद्ध समझते हैं । क्या खूब चाल !” दलित साहित्यकार दलित साहित्य को गांधीवाद और मार्क्सवाद से प्रभावित नहीं मानते । सत्यप्रेमी का कहना है - “यह बात भी सत्य है कि अस्पृश्यता निवारण गांधी का दूसरा महान उद्देश्य था । इस उद्देश्य में उन्हें उनके साथियों और अनुयायियों ने ही धोखा दिया था, क्योंकि उनके साथ हरिजन बस्तियों में जानेवाले में से कई खदरधारी ऐसे थे, जो अपने घर में प्रवेश करने से पूर्व संपूर्ण स्नान करते थे और तुलसी के पत्ते जल में डाल छिड़काव करते थे ।”⁸

इस प्रकार दलितों पर सवर्ण जातियों के लोगों की भावना समाज में भेदभाव उत्पन्न कर सामाजिक स्थितियों में न केवल भयंकरता उत्पन्न करती बल्कि दलितों में विद्वेष की भावना उत्पन्न करती है । दलित साहित्य इस सामाजिक असमानता के खिलाफ है, जो समाज को एक नई दिशा प्रदर्शन करता है । इस संबंध में ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहना है - “दलित साहित्य समाज में समानता, भाईचारा और मानवीय स्वतंत्रता की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है । उसका मानना है कि मनुष्य ही सर्वोपरि है । इस प्रकृति में जो कुछ हमारे सामने है, वह मनुष्य की देन है । इसलिए मनुष्य की महत्ता को स्वीकार करते हुए दलित साहित्य मनुष्य का साहित्य है ।”⁹

9. ओम प्रकाश वाल्मीकि -दलित साहित्य (अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ) पृ. 8

1.4 भारतीय दलित साहित्य :

स्वतंत्रता पूर्व भारत में दलितों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी । स्वातंत्र्योत्तर काल में इनकी स्थिति में थोड़ा बहुत परिवर्तन आया । अंग्रेजों के शासनकाल में दलितों की स्थिति में सुधार लाने में जहाँ एक ओर तत्कालीन बुद्धिजीवि समाज सुधारक राजा राममोहन राय, विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, राममनोहर लोहिया, ईश्वरचन्द्र विद्यसागर, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जैसे महापुरुषों का भारसक प्रयास देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता पूर्व और बाद फकीर मोहन सेनापति, गोपीनाथ महांति, प्रेमचन्द, रेणु, अमृतलाल नागर, जगदीशचन्द्र, गिरिराज किशोर, निराला, धूमिल, नागार्जुन जैसे कवि विशिष्ट साहित्यकारों ने दलितों की व्यथा-कथा को बड़ी संवेदना के साथ उभारने का सफल प्रयास किया था । इससे पहले यहाँ के संत साहित्य में भी दलितों के प्रति संवेदना आहरण उनमें चेतना जागृत करने का प्रयास जारी था । संत कवि कबीर और रैदास ने समाज में ब्राह्मणों के दलितों पर अन्याय -अत्याचार का बखूबी चित्रण के साथ उनकी असलियत का पर्दापाश कर उन पर निमर्मम प्रहार किया था । वस्तुतः इन दो संतों को हिन्दी साहित्य में दलितों का अग्रदूत माना है । प्रेमचन्द की रचनाओं में दलितों के प्रति संवेदना और उनमें चेतना उत्पन्न करने का अनुरूप चित्रण देखने को मिलता है । इसलिए प्रेमचन्द दलितों के पक्षधर माने जाते हैं । इतना ही नहीं राष्ट्रीय स्तर पर कई भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों ने इस दिशा में अपनी -अपनी लेखनी चलाई थी । ओड़िआ साहित्य के विशिष्ट कथाकार गोपीनाथ महांति ने 'हरिजन', 'परजा', 'अमृत र संतान' जैसे महाकाव्यात्मक उपन्यासों में आदिवासी जन जातियों के दुःख, परेशानियों, सामाजिक यातनाओं को बड़ी बारीकी से रेखांकन कर समाज में आलोड़न उत्पन्न किया था । पर दलित साहित्यकार ऐसे कवि, कलाकारों की रचनाओं को दलित साहित्य के दर्जे में स्थान देने में हिचकिचाते हैं । उनका कहना है कि दलित साहित्य में सामाजिक विविध व्यथा जात-पांत, छूत-अछूत भेदभाव को लेकर दलितों में जैसे आक्रोश की भावना दिखाई गई है साथ ही सवर्ण लोगों, खासकर ब्राह्मणों के ब्राह्मणवाद के खिलाफ संग्राम की जो ज्वाला जलाई गई है, जिससे अंतिम समय तक दलित ने कमर कस कर लड़ना सीखा । ऐसी भावना इन रचनाओं में देखने को नहीं मिलती । ऐसी रचनाओं में दलितों की स्थिति का यथार्थ वर्णन और संवेदना का भारी चित्रण ही है । यहाँ तक कि ये लोग प्रेमचन्द और नागार्जुन जैसे रचनाकारों की रचनाओं में उनके दलित चिंतन पर नकारात्मक दृष्टि डालकर विरोधीमन्तव्य प्रदान करते हैं । इस संदर्भ में ओमप्रकाश बाल्मीकि के दिये गये मन्तव्य द्रष्टव्य है । "प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य के महान कथाकार हैं । भारतीय जीवन का जो रूप गांव में बसता है, उसे चित्रित करने में प्रेमचन्द एक कुशल चितेरे हैं, जो किसान और मजदूरों के हिमायती के रूप में प्रख्यात हैं । लेकिन जब दलित जीवन पर कलम चलाते हैं तो हिन्दू समाज में दलितों के प्रति जो सोच और दृष्टिकोण हजारों साल से मौजूद है, प्रेमचन्द भी उससे मुक्त नहीं हो पाते । इसलिए पूना पैक्ट के समय वे गांधी के साथ रहे न कि अम्बेडकर के । उन दिनों दैनिक

जागरण के संपादक के रूप में उनकी संपादकीय टिप्पणियां इस तथ्य की साक्षी देती हैं। 'कफन' कहानी पर दलित साहित्य में जो बात उठी है, हिन्दी आलोचकों ने उसे गंभीरता से नहीं लिया है। जो कहानी दलित जीवन को नकारा, अक्रमण्य सिद्ध करती है। उन्हें असभ्य, नीच, गैर-जिम्मेदार बताया हो, वह कहानी आज भी हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी के रूप में पढ़ाई जाती है।¹⁰

हिन्दी साहित्य में नागार्जुन हरिजनों के पक्षधर माने जाते हैं। उनकी 'हरिजन गाथा' को दलित चेतना की कविता माना जाता है। उन्होंने दलितों को मनु पुत्र कह कर संबोधित किया है। पर यह दलित साहित्य की चेतना के विरुद्ध है, साथ ही उनके द्वारा हरिजन शब्द का प्रयोग यह भी दलित दृष्टि से उचित नहीं है। जब कि डॉ. अम्बेडकर का मनुस्मृति दहन को दलित आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण पड़ाव माना जाता है। इससे दलित अस्मिता और दलित चेतना को एक नया और जुझारु रूप मिलता है। 'हरिजन गाथा' में उनके द्वारा प्रयुक्त 'मनु शब्द' और 'दलित' पर दलित साहित्यकारों का विरोधी मनोभाव देखने को मिलता है। नागार्जुन के शब्दों में -

“एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं,

तेरह के - तेरह अभागो

अर्किचन मनुपुत्र

जिन्दा झोंक दिए गए होंगे ।”

(हरिजन गाथा)

इसी प्रकार

दिल से कहा -

सब बच्चे अब बागी होंगे ।”

वस्तुतः दलित समाज द्वारा ऐसे शब्दों का हमेशा विरोध किया जाता है। क्योंकि मनु के द्वारा विरचित 'मनुस्मृति' जाति, व्यवस्था पर आधारित दलितों के प्रबल विरोधी है। दूसरा दलित शब्द को दलित वर्ग एक गाली मानते हैं। दलित अस्मिता की परवाह किए बिना नागार्जुन द्वारा इस शब्द का प्रयोग दलितों के मन में एक नकारात्मक भावना उत्पन्न करती है। दलित चेतना की दृष्टि से विरोधाभास दिखाई देता है।

10. दलित मुक्ति आंदोलन की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति : मराठी कविता (लेख) : डॉ. विमल घोरात, दलित चेतना साहित्य, सं. रमणिका गुप्त, पृ. 121

वस्तुतः सदियों से मानव अधिकारों से वंचित, सामाजिक स्तर पर घृणित, पीड़ित और समाज में नीच या अस्पृश्य कहे जाने वाले व्यक्तियों की मौलिक चेतना से जुड़ा हुआ साहित्य ही दलित साहित्य है। दलितों की व्यथा-कथा या दलित पीड़ा का हृदयस्पर्शी वर्णन को दलित साहित्य कहा नहीं जा सकता। गुजराती दलित कवि जयन्त परमार भारतीय दलित साहित्य को अम्बेडकर-दर्शन की उपज मानते हैं। उन्होंने मार्क्स दर्शन या गांधी दर्शन आदि पर चर्चा करते हुए अम्बेडकर चिंतन और दर्शन को प्रमुखता प्रदान की है। उनके अनुसार दलितों पर रेखांकन करने वाले पूर्ववर्ती साहित्यकारों पर आरोप लगाते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि ने एक जगह कहा है कि - “हिंदी साहित्य के इतिहास में जिन दलित रचनाकारों का उल्लेख आया है वे सामाजिक बदलाव की चेतना जगाने में असमर्थ रहे हैं। पारंपरिक आदर्शों और मान्यताओं से भिन्न उनकी मान्यताएँ या सोच दूरगामी परिणाम नहीं दिखाई। इस प्रकार विविध आलोचना-पर्यालोचनाओं से यह सावित हो चुका है कि दलित साहित्य के उद्भव और विकास में अम्बेडकर की सबसे बड़ी देन है। वे दलितों के मसीहा बनकर आये। उन्हीं से ही दलित साहित्य लिखने की परंपरा सृष्टि हुई। दलित साहित्य का वास्तव्य स्वरूप जानने के बाद अब हम भारतीय दलित साहित्य पर चर्चा करेंगे।

* मराठी दलित साहित्य :

दलित साहित्य के उद्भव का श्रेय अम्बेडकर को दिया जाता है। यह सच है कि अम्बेडकर के चिन्तन, मनन और दर्शन के पीछे भगवान बुद्ध, संत कबीर, महात्मा फूले के विचारों का प्रभाव है। महाराष्ट्र में दलितों में शिक्षा के प्रचार-प्रसार में अम्बेडकर प्रयास ने आगे चलकर उनमें दलित साहित्य की सृष्टि की दिशा में काफी सहायता पहुँचायी। वस्तुतः मराठी दलित साहित्य सबसे पहले महाराष्ट्र भीम आंदोलन के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होता है। महाराष्ट्र में भीम आंदोलन की शुरुआत १३वीं सदी में होती है। उस काल में दो संप्रदायों का प्रारंभ होता है। एक महानुभव संप्रदाय और दूसरा चारकरी संप्रदाय। इस चारकरी संप्रदाय में विभिन्न जातियों के संतों ने भक्ति और भक्ति परक रचनाओं से पददलिता जनता में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था। इन संतों में चोखा मेला(महार), संतगोरा(कुम्हार), सेना(नाई), सावता(माली), जनाबाई(दासी), जैसे संतों ने भक्ति का आनन्द केवल मंदिर कलश के दर्शन करके ही लिया। इसलिए चोखा मेला की वाणी में अस्पृश्यता की वेदना सर्वत्र दिखाई देती है, लेकिन उनके पुत्र कर्ममेला के स्वर में विद्रोह भी है।”¹¹

11. ओमप्रकाश वाल्मीकि : दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृ. -55

आगे चलकर जलस्रोतों पर सवर्ण और असवर्णों का समान अधिकार एवं मंदिर प्रवेश जैसे सामाजिक सवालों पर संघर्ष करने वाले डॉ. अम्बेडकर की वाणी ने दलित समाज में जागृति उत्पन्न की। कुछ जनकवियों ने लोकगीतों के जरिये जातिगत भेदभाव और अस्मृश्यता का चित्रण किया। फलतः समाज में धीरे-धीरे विद्रोहात्मक स्वर मुखरित होने लगा। शूद्रों की शिक्षा तथा नारी चेतना के प्रबल समर्थक ज्योतिबा फूले लिखित 'त्रिज्या रत्न' नाटक से दलितों को काफी प्रोत्साहन मिला। इस नाटक में पुराणों में वर्णित कुछ मान्यताओं का घोर विरोध किया गया। घोड़ीराम का 'वेदाचार' नामक ग्रंथ भी आगे दलित साहित्य के पुस्कल परिप्रकाश में काफी सहायता की। धीरे-धीरे सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करने वाले कुछ जन कवियों की कलम से दलित कविताएँ लिखी गईं। ऐसी कविताएँ लिखने वालों में वामनराव, कर्डक, शहिर हेकड़े, दीनबन्धु रोगांवकर आदि प्रमुख माने जाते हैं।

धीरे-धीरे मराठी दलित कविता में विद्रोह का स्वर निनादित हुआ। ऐसी कविता लिखने में दया पवार, नामदेव ढसाल, वामन निम्बालकर, अर्जुन डांगले आदि प्रमुख माने जाते हैं। काव्य-कविताओं के अलवा मराठी दलित साहित्य में कई कथाकारों ने कहानी, उपन्यास आदि भी लिखे हैं। दलित साहित्य को बढ़ावा देने में मराठी में प्रकाशित बहुत सी पत्र-पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका देखने को मिलती है। मराठी साहित्यकारों ने अस्पितादर्श और 'विद्रोह' जैसी साहित्यिक पत्रिकाओं के माध्यम से दलित विमर्श पर कई शोधपरक निबंध, आलोचना और प्रकाशित आदि लिख कर दलित साहित्य की लोकप्रियता की वृद्धि में काफी सहायता की 'अस्मितादर्श' पत्रिका में समय-समय पर कई दलित साहित्यकारों के आत्मकथन प्रकाशित हुए हैं।

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह मराठी में अनेक दलित आत्मकथाएँ लिखी गई हैं। 1990 के दशक में मराठी में लिखे गये दलित लेखकों की आत्मकथाएँ बहुचर्चित रहीं। इनमें डॉ. शरणकुमार लिम्बाले की 'अक्कामाषी' आत्मकथा अत्यन्त चर्चित और प्रभावोत्पादक रही। इससे प्रभावित होकर महाराष्ट्र के कई दलित लेखकों ने आत्मकथा लेखन की परंपरा को आगे बढ़ाया। इनमें रमाबाई रानडे, दया पवार, मुकुन्द पावड़े, वसंत मनु आदि प्रमुख माने जाते हैं। इन रचनाकारों से प्रेरणा पाकर अन्य भारतीय भाषाओं के दलित रचनाकार खास कर हिंदी के ओमप्रकाश बाल्मीकि, मोहन दास नैमिषराय, सूरजपाल चौहान प्रमुख दलित लेखकों ने आत्मकथाएँ लिखी। मराठी में आत्मकथा लिखने वालों में माधवकोड़ विलकर, शंकर राव खरात, दया पवार आदि प्रमुख माने जाते हैं। पुरुष लेखकों की तरह कुछ दलित महिलाओं ने भी आत्मकथाएँ लिखी हैं। इनमें रमाबाई, जनाबाई गिरह, मुक्ता सर्वगौड़, ताई कांबले आदि का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

* तेलुगु दलित साहित्य :

तेलुगु भाषा में 1990 से दलित साहित्य लेखन की शुरूआत हुई । दलितों की समस्याओं को तेलुगु कविता में प्रतिबिंबित करने वाले प्रथम कवि हैं 'गुरुमजाषुवा' । उन्होंने 'गब्बिलम्' और 'अनाथा' जैसी कविताओं के जरिए समाज में प्रचलित छूआछूत समस्या पर प्रकाश डालकर दलितों में आक्रोश उत्पन्न करने का भरसक प्रयास किया था । जाजुबा के बाद जाला रंगाकवि, कुसुमा धर्मन्व और नक्का चिनवेकाया जैसे दलित कवि अस्पृश्यता के विरोध में कविताएँ लिखने लगे । इनकी कविताओं से तत्कालीन समाज पर काफी प्रभाव पड़ा था । दलितों के मसीहा अम्बेडकर के चिन्तन और आदर्श को महत्व प्रदान करने वाले कवि भीमन्ना ने सामाजिक भेद-भाव को हटाने के लिए अपनी कविताओं के माध्यम से दलितों में चेतना उत्पन्न की थी । इनकी कविताओं में सामाजिक समानता का स्वर है । तेलुगु भाषा में लिखी गई दलित कविताओं में कवि कत्ति पद्मराव की कविता जनजीतम्, देशम् डैरी आदि बहुचर्चित हैं । दलित युवा कवियों में मास्टर्जी एक प्रतिभाधर कवि हैं । "प्रणाम स्वीकार करो बाबा अम्बेडकर" उनकी एक जनादृत कविता है । 'रंडि रो दलितन्ना' (आओ दलित भाइयो) उनका एक ऐसा दलित काव्य संग्रह जिसमें सशक्त आंदोलन के लिए दलितों को उत्प्रेरित करने की भरपूर भावना पाई जाती है

1.5 हिंदी दलित साहित्य :

भारत वर्ष में दलित चेतना के प्रचार -प्रसार में हिंदी दलित साहित्यकारों का सबसे अधिक योगदान देखने को मिलता है । इस दिशा में दलित साहित्यकारों के अलावा शुरू से कुछ गैर दलित साहित्यकारों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है । पर गैर दलित साहित्यकारों के द्वारा किये गये ऐसे प्रयास दलित साहित्यकारों द्वारा नकारात्मक दृष्टि से देखे जाते हैं । दलित गैरगैर दलित साहित्यकारों की रचनाओं के मूलभूत अंतर स्पष्ट करते हुए ओम प्रकाश बाल्मीकि ने कहा है -

“ दलित जीवन और उनकी समस्याओं पर गैर दलित, जैसे प्रेमचन्द, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, गिरिराज किशोर, जगदीश चन्द्र आदि ने लिखा है और दलित लेखक ओमप्रकाश बाल्मीकि, मोहन दास नैमिशराय, श्यौराज सिंह बेचैन आदि ने भी लिखा है । किन्तु उनकी अन्तर्वस्तु में इनके द्वारा अर्जित और प्रतिष्ठित मूल्यों में और उस अनुभव की प्रक्रिया की व्याख्या में गहरा फर्क है । जाहिर है, इन मूल्यों की प्रकृति और प्रक्रिया में वर्णभेद अहम भूमिका अदा करता है । उनके अपने आग्रह और संस्कारिक मूल्य मानन्यताएँ कृति की समग्रता में अपने निष्कर्ष स्थापित करती हैं, उसे प्रभावित करती हैं । यह सब एक विशिष्ट सतर्कता के रूप में प्रस्तुत होकर अपनी विशिष्टता रेखांकित करता है ।”¹²

अनुरूप विचार भी कंवल भारती में देखने को मिलता है । उनका कहना है - “हिंदी दलित साहित्य वह

है जो दलित मुक्ति के सवालों पर पूरी तरह अम्बेडकरवादी है। सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में उसके सरोकार वे ही हैं जो अम्बेडकर थे। दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है। अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला का नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है। इसलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों के द्वारा लिखा गया साहित्य हर दलित साहित्य की कोटि में आता है।¹³ डॉ. एन. सिंह भी दलितों के द्वारा लिखे गये साहित्य को दलित साहित्य मानते हैं। अपनी पुस्तक 'दलित साहित्य के प्रतिमान' में उन्होंने इस पर अपना विचार स्पष्ट करते हुए कहा है - "दलित साहित्य दलित लेखकों द्वारा लिखित वह साहित्य है जो सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और मानसिक रूप से उत्पीड़ित लोगों की जीवन्त भाव में लिखा गया हो।"¹³

हिंदी में दलित साहित्य लिखने की परंपरा नौवें दशक से शुरू होती है। कुछ लोगों की यह धारणा है कि हिंदी दलित साहित्य का उद्गम मराठी दलित साहित्य से हुआ है यानी हिंदी दलित साहित्य पर मराठी दलित साहित्य की संपूर्ण छाप है। पर इनकी धारणा पूरी तरह सच नहीं है। हिंदी दलित साहित्य के उद्भव के पीछे नाथ और सिद्ध कवियों की महत्वपूर्ण भूमिका देखने को मिलती है। सिद्ध कवियों में बहुत सारे कवि शुद्र थे, जिन्होंने अपनी तत्कालीन पीड़ा का परिप्रकाश किया था। इतना ही नहीं मध्यकाल में निर्गुण संत रैदास जैसे कवि ने खुद वर्ण व्यवस्था के शिकार होकर इसके खिलाफ आवाज उठायी थी। दलितों में चेतना उत्पन्न करने का प्रयास किया था। इस दृष्टि से उन्हें मध्यकाल में प्रथम दलित चेतना संपन्न कवि माना जाता है। वस्तुतः हिंदी दलित कविता मध्यकाल के निर्गुण संत कवि रैदास और कबीर से शुरू होकर 'हीराडोम' और 'अछूतानंद' तक आयी।

बीच में लगभग पांच सौ वर्षों तक अन्तराल में निश्चित रूप से और कुछ कवि हुए होंगे जिनसे सामाजिक छूत-अछूत भेद-भाव के खिलाफ आवाज बुलन्द की गई होगी। लेकिन यह देखने को मिला है साठ दशक में महाराष्ट्र में वर्ण व्यवस्था के खिलाफ मराठी दलित कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से दलितों में चेतना उत्पन्न की न केवल ब्राह्मणवाद पर प्रहार किया बल्कि पूरे मराठी साहित्य की नींव हिला दी। इसका प्रभाव पूरे हिन्दुस्तान में देखने को मिला। फलतः भारत के अन्य प्रान्तों के दलित साहित्यकार इनसे उत्प्रेरित हुए। खासकर हिंदीभाषी प्रांतों में हिंदी के दलित कवियों ने बड़े जोश

12. कंवल भारती : दलित साहित्य की अवधारणा शीर्षक, लेख

13. डॉ. एन सिंह : दलित साहित्य के प्रतिमान, पृ. 23

के साथ दलित कविता लिखना शुरू किया । थोड़े ही दिनों में हिंदी में दलित कविता की बाढ़ सी आ गई । आगे चलकर दलित साहित्य हिंदी साहित्य का एक अंग बन गया । दूसरी ओर उत्तर प्रदेश में कांशीराम द्वारा डी.एस और बसपा की स्थापना के बाद हिंदी दलित लेखकों पर इसका काफी प्रभाव पड़ा । दलितों को बल मिला । मंडल कमीशन से दलित साहित्य को एक नई दिशा मिली । आगे चलकर राजेन्द्र यादव के संपादन में प्रकाशित 'हंस' और रमणिका गुप्त की 'युद्धरत आदमी' जैसी पत्रिकाओं में अनेक दलित रचनाकारों की रचनाएँ प्रकाशित होने लगी । विगत दो ढाई दशकों में हिंदी के दलित साहित्य में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, आत्मकथा, आलोचना जैसी साहित्य की विविध विधाओं में पर्याप्त संख्या में पुस्तकें रची गई ।

इस प्रकार हिन्दी में दलित साहित्य का उद्भव और विकास होने लगा । डॉ. एन. सिंह ने कहा है - “ हिंदी में दलित साहित्य की बाकायदा शुरूआत बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में हुई । इसकी प्रेरणा डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा तो ली ही महात्मा ज्योतिबा फूले का संघर्ष, मार्क्स की क्रांति दृष्टि तथा मराठी का दलित साहित्य भी रहा । ”

सितम्बर 1914 अंक की मासिक पत्रिका 'सरस्वती' में प्रकाशित 'हीराडोम' की 'अछूत की शिकायत' कविता में चित्रित दलितों की त्रासदी ने तत्कालीन दलित लेखकों की कलम को आधार बनाया । साथ ही अछूतानन्द 'हरिहर' की लोकप्रिय कला कृति 'आदिवेश का डंका' ने दलितों में जागृति उत्पन्न की । वे एक संवेदनशील कवि हैं । 'आदिवंश का डंका' पुस्तक की लोकप्रियता ने अछूतानन्द 'हरिहर' को अजर अमर बना दिया है । अछूतानन्द जी के बाद इस दिशा में कई प्रमुख कवि आते हैं । इनमें से श्री विहारी लाल हेरित और उनके शिष्य श्री लक्ष्मीनारायण सुधाकर, श्री राजपाल सिंह राज, श्री कालीचरण गौतम, श्री जसराम हरनौटिया जैसे कवियों की कविताओं में दलितों की यथार्थ स्थिति उभारा गया है । श्री बिहारी लाल 'हरित' राष्ट्रीय अम्बेडकर पुरस्कार, हिंदी अकादेमी पुरस्कार, नेहरू स्मृति पुरस्कार आदि पुरस्कारों से प्रख्यात हैं । इसी परंपरा में दलित कवियों में श्री बाबूलाल 'सुमन, माता प्रसाद, लक्ष्मी नारायण सुधाकर, एन आए सागर, सोहन लाल सुमनाक्षर, डॉ. दयानंद बटोही, लालचंद राही, डॉ. सुखबीर सिंह, मंशाराम विद्रोही, डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, तेजपाल सिंह तेज, डा. धर्मवीर भारती, डॉ. चन्द्रकुमार वरठे, कंवल भारती, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजमल चौहान, कर्मशील भारती, डॉ. एन सिंह, कुसुम वियोगी, डॉ. जयप्रकाश कर्दम आदि आते हैं जिनमें से कुछ कवि, कथाकार और समीक्षक भी हैं । 'अम्बेडकर' महाकाव्य के रचयिता श्री बाबूलाल 'सुमन' की दलित कवियों में एक अलग पहचान है । अम्बेडकर महाकाव्य में ग्यारह सर्ग हैं । पूरे काव्य में विद्रोह, संघर्ष और काव्य सौन्दर्य की अपूर्व छटा है । कवि ने इस महाकाव्य में अम्बेडकर के चिन्तन, मनन और विदोहात्मक प्रवृत्तियों को बड़ी सुन्दरता से स्पष्ट किया है । स्वातंत्र्योत्तर दलित कवियों में

कवि माताप्रसाद का एक महत्वपूर्ण स्थान है । उनकी विशिष्ट काव्य कृति 'एकलव्य' खंडकाव्य में तत्कालीन सामाजिक वर्णव्यवस्था पर गहरी चोट देखने को मिली है । 11 सितम्बर सन् 1925 में उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले के कस्बा मछलीशहर में एक निर्धन दलित परिवार में जन्मे माताप्रसाद अपनी प्रतिभा और निरंतर साधना के बल पर भारतीय राजनीति और साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी बने । आप कुछ दिनों तक उत्तर प्रदेश विधान सभा और विधान परिषद के सदस्य रहे साथ ही साल 1993 से 1999 तक अरुणाचल प्रदेश के राज्यपाल भी रहे । आपने साहित्य की विविध -विधाओं में कलम चलाकर कई चर्चित कृतियों से दलित साहित्य को समृद्ध किया है, अछूत का बेटा, धर्म के नाम पर धोखा, प्रतिशोध, धर्म परिवर्तन(नाटक), हिंदी काव्य में दलित काव्य धारा, उत्तर प्रदेश दलित जातियों का दस्तावेज, एकलव्य खंडकाव्य, भीम शतक, रणनीति की अर्द्धसतसई जैसी अनेकानेक कृतियों के साथ आत्मकथा 'झोंपड़ी से राजभवन' बहुचर्चित हैं । बहुमुखी प्रतिभा तथा सारस्वत साधना के फलस्वरूप आपको अखिल भारतीय दलित साहित्य अकादमी की ओर से 1999 में राष्ट्रीय सम्मान, 1994 में हिन्दी प्रचारिणी सभा, कानपुर से 'कीर्ति भारती' सम्मान तथा अन्य कई सम्मानों से सम्मानित किया गया है । दलित साहित्यकारों में लक्ष्मीनारायण सुधाकर और एक विलक्षण प्रतिभासंपन्न कवि हैं । आप उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जिले के अठलू गांव के निवासी थे । वे एक अनुसूचित दरिद्र परिवार में जन्मे थे । आपने बहुत सी कठिनाइयाँ झेलकर निरन्तर प्रयास से एम. ए. किया और जीवन भर सारस्वत साधना में जुड़े रहे । गांधीवादी कवि अम्बेडकर के जीवनवृत्त पर आधारित 'भीम सागर' आपकी सर्वश्रेष्ठ काव्य कृति है । आपकी अन्य काव्य कृतियों में एक बहुचर्चित काव्य संग्रह है 'उत्पीड़न की यात्रा' । इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ भाव और शैली की दृष्टि से अभिनव पाई जाती है । जो समकालीन हिंदी इसी क्रम में हिन्दी पाठकों का ध्यान खींचती है । इसी क्रम में साहित्यकारों में और एक जाने माने कवि हैं एन. आर. सागर । सागरजी एक सफल कवि और अनुवादक भी हैं । वे आकाशवाणी में नौकरी करते थे । पहले पहल वे अनुवाद कार्य करते रहे । उन्होंने डॉ. अम्बेडकर की बहुत सी कृतियों का अनुवाद कर साहित्य जगत् में अपना पैर रखा, पर बाद में अन्तिम अवरोध, लाजवन्ती, कंटक जैसे नाटक और भीम प्रशस्ति, आक्रोश , आजाद हैं हम जैसी काव्यकृतियाँ लिखकर हिंदी दलित साहित्य के भंडार की श्रीवृद्धि की । नाटकों की तुलना में काव्यकृतियाँ अधिक असरदार पाई जाती हैं । हिंदी दलित कवियों में एक प्रमुख कवि हैं डॉ. दयानन्द 'बटोही', जिन्होंने विद्यार्थी जीवन से सामाजिक विसंगतियों पर कलम उठाकर समाज में विद्रोह की चेतना उत्पन्न करने का बीड़ा उठाया था । वे कवि और कलाकार भी हैं । वे नयी लहर और साहित्य यात्रा जैसी पत्रिका के संपादक भी रहे । सुरंग(कहानी संग्रह), साहित्य और सामाजिक क्रांति (निबंध संग्रह) तथा यातना की आँखें(नवगीत संग्रह) जैसी साहित्यिक कृतियों ने उन्हें काफी सफलता प्रदान की । आपकी 'द्रोणाचार्य

सुनें उनकी परंपराएँ सुनें’ कविता एक ऐसी कालजयी कविता जिसके कारण आपको दलित कवियों की पहली पंक्ति में स्थान मिला । यह दलित छात्रों और युवकों के साथ हो रहे अन्याय का पर्दापाश कर चेतना उत्पन्न करनेवाली समयानुकूल युगधर्मी कविता है । उज्जैन के एक मजदूर परिवार में सन् 1942 को जन्मे कवि लालचन्द ‘राही’ का दलित साहित्यकारों में एक अलग स्थान है । घर की आर्थिक दुर्गति, सामाजिक भेद-भाव और विसंगति ने उन्हें बचपन से संघर्ष के तौर पर जीना सिखाया । उनके पिता और माता रोज की मजदूरी से रोजी-रोटी कमाते थे । लालचन्द को घूम-घूम कर मूंगफली बेचना पड़ रहा था । इतनी सारी परेशानियों के बावजूद लालचंद एम.ए.(समाज शास्त्र) तथा बी.टी करके सरकारी स्कूल में प्रधानाचार्य के पद पर आसीन रहे । आपने न केवल जीवन भर संघर्ष किया बल्कि अपनी लेखनी के जरिये दलितों में चेतना उत्पन्न करने की उन्हें संघर्ष कर अपना हक छीनना सिखाया, ‘डॉ. अम्बेडकर का जीवन गीत’ मूक नहीं मेरी कविताएँ, मधुपथ, भीम चेतवनी, राष्ट्रीय गीत, गीत भारती आदि उनके काव्य संग्रह हैं । पद्य विधा के अलावा आपने मिलन, समाज, अभागा, खादी की टोपी जैसे कुछ महत्वपूर्ण नाटकों की रचना कर दलित साहित्य को काफी समृद्ध किया है । भारतीय दलित साहित्य अकादमी ने लालचंद जी को डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार से पुरस्कृत किया है । दलित साहित्यकारों में डॉ. सुब्बीरसिंह को कवि के रूप में विशेष ख्याति मिली है । डॉ. सुब्बीरसिंह दिल्ली कालेज में हिन्दी प्रध्यापक थे । 1994 में उनका देहान्त हुआ । उन्होंने अध्यापना वृत्ति का सफल निर्वाहन के साथ दलित साहित्य सृष्टि में अपनी कलम का जादू दिखाया है । ‘बयान बाहर’, अनन्तर, और सूर्याश उनके काव्यसंग्रह हैं । वे एक प्रख्यात समीक्षक हैं । उनके समीक्षाग्रंथों में रामचरितमानस की पाश्चात्य समीक्षा, हिंदी कवि की समकालीन चेतना, समीक्षा के बदलते प्रतिमान आदि प्रमुख माने जाते हैं । आपने दूसरा दिविक, पुनर्संभवा, कविता का वैचारिक वर्तमान पौधे कई ग्रंथों का संपादन भी किया है । दलित कवियों में दीर्घ कविता लिखने में आपकी एक अलग पहचान है । उनकी दीर्घ कविता ‘बयान बाहर’ इसका उदाहरण है ।

डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी दलित साहित्यकारों में एक प्रतिभासंपन्न कवि और ललित निबंधकार हैं । 1944 को उनका जन्म मध्यप्रदेश के उज्जैन के पास नारायणपुर में हुआ था । वे शिक्षा विभाग में काम करते थे । अपनी दीर्घकालीन साहित्य यात्रा में सत्यप्रेमी जी ने काव्य ग्रंथों के अलावा कई ललित निबंध लिखे हैं । उन्होंने ललित निबंधकार विद्यानिवास मिश्र के निबंधों पर शोध किया था । उनकी प्रकाशित कृतियों में सवालियों के सूरज, द्वारपर दस्तक, मूक माटी की मुखरता, (काव्य संग्रह) पत्ते क्यों गिरते हैं दलित साहित्य और सामाजिक न्याय(निबंध संग्रह) अत्यंत आकर्षक और लोकप्रिय हैं । उन्होंने दलित साहित्य ; रचना और विचार, जन कवि मानसिंह राही आदि ग्रंथों का संपादन किया है । भारतीय दलित साहित्य अकादमी ने उन्हें ‘डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया है ।

भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से उनकी कविताएँ अत्यन्त धारदार हैं। इस क्रम में आनेवाले डॉ. प्रेमशंकर एक प्रभावशील कवि और आलोचक हैं। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से उच्चशिक्षा प्राप्त करने वाले प्रेमशंकर जी अपनी शिक्षा और प्रतिभा के बल पर लालबहादुर राष्ट्रीय प्रशासन अकादेमी मसूरी में वहाँ प्रोफेसर बने। अब वे सेवानिवृत्त हैं। एक दलित होने के नाते अपने जीवन की कटु अनुभूति और सामाजिक परिवेश ने उन्हें दलित साहित्य रचना की दिशा में उत्प्रेरित किया। फलतः उन्होंने दलितों पर कई काव्य-कविताएँ लिखी। इसके अतिरिक्त हिंदी भाषा साहित्य में भी उनकी बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित हुईं। उनकी कृतियों में नयी कविता : नया मूल्यांकन, हिन्दी और उसकी उपभाषाएँ, अपनी शताब्दी में उपेक्षित, दलितों का चीखता अभाव, कविता : रोटी की भूख तक बहुचर्चित हैं। कवि मलखान सिंह हिन्दी दलित कविता के एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं। 1949 में उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ के बसई गांव में जन्मे मलखान सिंह ने एम.ए. तक पढ़ाई की थी। पहले पहल उनकी कविताएँ लहर, उन्नयन, परिवेश एवं अमर उजाला जैसी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं। ये कविताएँ कवि के जीवनानुभव पर आधारित दलितों की यथार्थ स्थिति उभारने में सफल रहीं। सन् 1966 में प्रकाशित उनका 'सुनो ब्राह्मण' कविता संग्रह एक बहुआयामी लोकप्रिय पुस्तक है। इस पुस्तक पर कवि को राष्ट्रीय स्तर पर काफी प्रशस्ति मिली थी। भारतीय साहित्य में खासकर हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य को प्रतिष्ठा देने में मोहनदास नैमिशराय की भूमिका अत्यन्त सराहनी है। वे कवि, कथाकार, समीक्षक और नाट्यकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। एम.ए., बी.एड. शिक्षा प्राप्त करने वाले नैमिशराय शुरू से पत्रकारिता से जुड़े थे। इसीके साथ उन्होंने दलित होने के नाते दलित साहित्य की विविध विधाओं में कलम चलाई। आगे चलकर वे कई महत्वपूर्ण कृतियों के स्रष्टा बने। उनकी कृतियों में सफल एक बयान (काव्य संग्रह) क्या मुझे खरीदोगे ? (उपन्यास), अदालतनामा (नाटक), अपने अपने पिंजरे (आत्मकथा), बाबा साहब आरे उनके संस्मरण आदि प्रमुख हैं। उनकी कविताओं में क्रांति का स्वर और समाज को बदल डालने का आह्वान है। दलितों में जागृति उत्पन्न करने में उनकी कविताएँ ठोस भूमिका अदा करती हैं। सामाजिक सडांघ को उजागर करने वाले दलित लेखक ओमप्रकाश बाल्मीकि का दलित साहित्यकारों में एक स्वतंत्र स्थान है। आपका जन्म 30 जून 1950 बरला, जिला मुजफ्फर नगर, उत्तर प्रदेश में हुआ था। उनके परिवार की आर्थिक स्थिति अत्यन्त सोचनीय थी। फिर भी अपने दृढ़ मनोबल और निरन्तर साधना से वे तकनीकी शिक्षा प्राप्त कर भारत सरकार के रक्षामंत्रालय में कार्यरत रहे। बाद में उन्होंने एम.ए. (हिन्दी) की परीक्षा पास की। वे दलित थे। तत्कालीन सामाजिक परंपरा, जाति-पांति के भेदभाव से वे पूरी तरह व्यथित थे। इसलिए उन्होंने दलितों की मुक्ति के लिए अम्बेडकर की निष्ठा और आदर्श से उद्बुद्ध होकर दलित साहित्य की विविध विधाओं में कलम चलाना शुरू किया था। वे कवि, कहानीकार और आत्मकथा लिखने वाले भी हैं। उनकी प्रकाशित कृतियों

सदियों का संताप, वत्स बहुत हो चुका, अब ओर नहीं (कविता संग्रह). जूठन (आत्मकथा), सलाम, घुसपैठिये (कहानी संग्रह), दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र मुख्यधारा और दलित साहित्य, सफाई देवता (सामाजिक अध्ययन), दलित साहित्य : अनुभव, संघर्ष और यथार्थ आदि प्रमुख हैं। उन्होंने लगभग 60 नाटकों में अभिनय और निर्देशन दिया है। उनके 'जूठन' का नाट्यरूपांतरण भी जालन्धर, चंडीगढ़, लुधियाना आदि नगरों में कई बार हो चुका है। दलित आंदोलन और सामाजिक सेवा के लिए प्रतिबद्ध ओमप्रकाश जी को अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार 1993, परिवेश सम्मान 1995, जयश्री सम्मान 1996, न्यू इंडिया बुक पुरस्कार 2004, साहित्य भूषण सम्मान 2006, विश्व हिन्दी सम्मेलन 2007, न्यूयार्क, अमेरिकन सम्मान आदि कई सम्मानों से सम्मानित किया गया है। ऐसे एक विशिष्ट दलित साहित्यकार का 16 नवम्बर 2013 में निधन हो गया।

दलित साहित्यकारों में कंवल भारती की एक स्वतंत्र पहचान है, वे अनुसूचित जाति के थे। उनका जन्म 4 फरवरी 1953 में उत्तर प्रदेश के रायपुर में हुआ था। उन्होंने एम.ए. तक पढ़ाई की थी। वे सरकारी नौकरी पर रहे। पत्रकारिता से उनका साहित्यिक जीवन प्रारंभ हुआ था। उन्होंने कई महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की है। इनमें से मनुस्मृति : प्रतिक्रांति का धर्मशास्त्र, काशीराम के दो चेहरे, डॉ. अम्बेडकर : एक पुनर्मूल्यांकन, लोकतंत्र में भागीदारी के सवाल आदि अत्यन्त योकप्रिय हैं। साथ ही उनका काव्य संग्रह 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती है ? एक बहुचर्चित ग्रंथ है। इस काव्य ग्रंथ के संबंध में प्रख्यात दलित साहित्यकार ओमप्रकाश बाल्मीकि का कहना है - "कंवल भारती दलित साहित्य के चर्चित हस्ताक्षर हैं। उनके संग्रह 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती ?' की कविताएँ आत्म विश्लेषण और अपनी निजता से प्रस्फुटित हुई हैं। उनकी कविता की प्रवृत्ति कभी सहज और सरल है, कभी तेज तर्रार मुखरता लिए हुए। कभी गंभीर तो कभी व्यंग्यात्मक। कंवल भारती इतिहास को नहीं भूले। अतीत की नग्नता भयावह रूप में खड़ी है। इतिहास ने दलितों को आत्महीनता, दासता और सांस्कृतिक गुलामी दी है।" (तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती, कंवल भारती, पृ. 13)। कंवल भारती का दलित साहित्य को अजस्र देन है। ऐसे प्रतिभाधर साहित्यकार को समय समय पर विविध संस्थाओं से पुरस्कृत किया गया है।

दलित साहित्य को समृद्ध करने में प्रमुख दलित साहित्यकारों में सूरजपाल चौहान की भूमिका अत्यन्त सराहनीय मानी जाती है। 20 अप्रैल, 1955 को उत्तर प्रदेश में अलीगढ़ जिले के फुसावली में सूरजपाल चौहान ने जन्म लिया था। संप्रति आप भारत सरकार के स्टेट ट्रेनिंग कार्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली में मुख्य प्रबन्धक एवं प्रभारी (राजभाषा) के पद पर कार्यरत हैं। पहले पहल उनकी कविताएँ, लेख आदि विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रहे थे। बाद में उनसे लिखी कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं। उनकी प्रकाशित कृतियों में है रि कब आयेगा (कहानी संग्रह), तिरस्कृत

(आत्मकथा), हिन्दी के दलित कलाकारों की प्रकाशित पहली कहानी (संपादन) प्रयास और क्यों विश्वास करुं(कविता संग्रह) आदि चर्चित हैं । उनकी अनेक कृतियां तेलुगु, मराठी, गुजराती, पंजाबी, अंग्रेजी, जर्मन आदि भाषाओं में अनूदित हुई हैं ।

डॉ. एन सिंह दलित साहित्य के प्रबल पक्षधर हैं । वे विद्रोही कवि और समीक्षक के रूप में दलित साहित्य में प्रसिद्ध हैं । आप जनपद सहारनपुर उवर प्रदेश के चतरसाली गांव में पैदा हुए थे । डॉ. सिंह जी के पिता का नाम श्रीनन्दा सिंह और माता का नाम श्रीमती गोमती देवी है । आपने एम.ए.(हिंदी) के बाद 1980 में पीएच.डी. डिग्री प्राप्त की है । सब 2007 में आपको हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर(उत्तराखंड) से डी.लिट् की उपाधि मिली । अब वे उवर प्रदेश में राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय में पाचार्य के रूप में कर्मरत हैं । पत्रकारिता से उनका लेखनीय जीवन शुरू हुआ था । अब वे अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों के स्रष्टा हैं । उनकी प्रकाशित कृतियाँ इस प्रकार हैं - सन्त कवि रैदास ; मूल्यांकन और प्रदेय, सतह से उठते हुए, विचार यात्रा में, मेरा दलित चिंतन, कठौती में गंगा, व्यक्ति और विमर्श, संपुट, दर्द के दस्तावेज, यातना की परछाइयाँ, काले हाशिए पर, चेतना के स्वर, शिकर की ओर, दलित साहित्य : चिन्तन के विविध आयाम, दलित साहित्य : और युगबोध, रैदास ग्रंथावली, दृष्टिपथ के पड़ाव, दलित साहित्य : परंपरा विन्यास, सुश्री मायावती और दलित चिन्तन । उनकी बहुत सी कविताओं का असमिया, तेलुगु, पंजाबी, गुजराती और अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद हो चुका है । सिंह जी को जीवन भर की सारस्वत साधना के लिए डॉ. अम्बेडकर विशिष्ट सेवा सम्मान -1995, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ का सर्जना पुरस्कार, 1998 ; मध्य प्रदेश दलित साहित्य अकादमी, उज्जैन का अकादमी पुरस्कार -1999, रामधारी सिंह 'दिनकर' सम्मान -2005, शिक्षक श्री सम्मान -2009, उत्तर प्रदेश सरकार लखनऊ आदि कई सम्मानों से सम्मानित किया गया है । वे दलितों की व्यथा -कथा को आम जनता के सामने पहुँचाने वाले एक सफल कवि हैं । व्यवस्था पर चोट एवं सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय उनका लक्ष्य है । हिंदी दलित साहित्य को समृद्ध करने में उनकी भूमिका अत्यंत सराहनीय है ।

हिंदी दलित साहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा और आलोचना जैसी विविध विधाओं में कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी गई हैं । काव्य -कविता क्षेत्र में कवि माताप्रसाद का 'दिग्विजयी रावण, डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन का क्रौंच हूँ, डॉ. जयप्रकाश कर्दम का 'तिनका तिनका आग', नवेन्दु महर्षि का 'संसद तो सर्वण है', एन. आर, सागर का 'आज्ञात हैं हम', डॉ. सी.बी. भारती का 'आक्रोश' जैसी पुस्तकें (काव्य संग्रह) विषय वस्तु, भाषा शैली आदि की दृष्टि से अभिनव मानी जाती हैं ।

काव्य -कविताओं की तरह दलित चेतना के विकास में कई कहानीकारों की भूमिका प्रशंसनीय

है। ऐसे कहानीकारों के कुछ चर्चित कहानी संकलन के नाम इस प्रकार हैं। ओम प्रकाश बाल्मीकि का 'सलाम', मोहनदास नैमिशराय की 'आवाजें', दयानन्द बटोही की 'सुरंग', सूरजपाल चौहान का 'हैरी कब आयेगा', प्रहलाद चंद दास का 'पुटुस का फूल' आदि कहानी संकलन कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से आकर्षक और प्रभावोत्पादक हैं। वस्तुतः ओमप्रकाश जी की कहानी 'सलाम' से दलित कहानी का आविर्भाव माना जाता है। ओमप्रकाश जी ने सलाम, कमीन, अम्मा, शवयात्रा, जैसी कहानियों के जरिए दलितों की त्रादसी का बखूबी चित्रण करते हुए दलित समाज में बड़ा आक्रोश उत्पन्न करने का भरसक प्रयास किया है।

हिंदी दलित साहित्य में अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में उपन्यासों की संख्या सीमित है। सीमित संख्यक दलित लेखकों ने हिंदी में दलितों की समस्याओं को लेकर उपन्यास लिखे हैं। देवीदयाल सेन ने दलितों की समस्याओं को लेकर उपन्यास लिखे हैं। देवीदयाल सेन के उपन्यास 'मानव की परख' को हिन्दी दलित साहित्य में पहला उपन्यास माना जाता है। कुछ आलोचक मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्ति पर्व' को पहला दलित उपन्यास मानते हैं। नैमिशराय जी का दूसरा उपन्यास 'वीरांगना झलकारी' और एक महत्वपूर्ण दलित उपन्यास है। उसी प्रकार हिंदी दलित उपन्यासों में जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास की एक अलग पहचान है। दलितों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति का जीता-जागता चित्र इस उपन्यास में उभर कर आया है। साथ ही लेखक की आकर्षक भाषा शैली उपन्यास को जीवन्तता प्रदान की है।

हिंदी दलित साहित्य में आत्मकथा लिखने की परंपरा डॉ. अम्बेडकर से शुरू होती है। वस्तुतः डॉ. अम्बेडकर ही दलित साहित्य के जन्मदाता और प्रेरणास्रोत हैं। उन्होंने सर्व प्रथम मराठी भाषा में अपनी आत्मकथा 'अमी कसा झालो' लिखकर दलित लेखकों को आत्मकथा लिखने को प्रेरित किया था। फलस्वरूप मराठी दलित साहित्य में पर्याप्त संख्या में आत्मकथाएँ लिखी जाने लगीं। बहुत जल्द ही इसका प्रभाव हिंदी दलित साहित्यकारों पर पड़ा और हिंदी दलित साहित्य में कई आत्मकथाएँ प्रकाशित हुईं। हिंदी में प्रकाशित कुछ आत्मकथाएँ इस प्रकार हैं -जूठन(ओमप्रकाश बाल्मीकि), अपने-अपने पिंजरे, भाग -1 और 2 (मोहनदास नैमिशराय), तिरस्कृत(सूरजपाल चौहान), दोहरा अभिशाप(कौसल्या बैसन्ती), झोंपड़ी से राजभवन(माताप्रसाद), ये सारी आत्मकथाएँ उपयुक्त लेखकों के पारिवारिक जीवन, तत्कालीन सामाजिक परिवेश, एवं विविध तथ्यों से परिपूर्ण एक-एक सफल दस्तावेज है।

UNIT - II

‘धरती धन न अपना’

UNIT - II

- 2.1 जगदीशचन्द्र जी की जीवनी और कृतियाँ
- 2.2 उपन्यास का कथानक
- 2.3 कथानक का विश्लेषण
- 2.4 उपन्यास में चित्रित दलित जीवन
- 2.5 परिवेश और लोक जीवन
- 2.6 चरित्र -चित्रण
- 2.7 भाषा-शैली
- 2.8 शीर्षक

UNIT - II

धरती धन न अपना : जगदीशचन्द्र

2.1 जगदीशचन्द्र जी की जीवनी और कृतियाँ

‘धरती धन न अपना’ समकालीन हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में अपनी तटस्थ एवं विशाल सामाजिक चेतना के तहत सफल पहचान रखने वाले रचनाकार स्व. जगदीश चन्द्र का एक बहुचर्चित उपन्यास है। सन् 1966 में प्रकाशित ‘यादों के पहाड़’ जगदीश चन्द्र का पहला उपन्यास है। पर सन् 1972 में ‘धरती धन न अपना’ प्रकाशित होते ही जगदीश चन्द्र को लेखक के रूप में प्रतिष्ठा हासिल हुई। आलोच्य ‘धरती धन न अपना’ उपन्यास के विवेचन के पूर्व उपन्यासकार जगदीश चन्द्र की जीवनी और व्यक्तित्व की संक्षिप्त जानकारी अपेक्षित है।

जगदीश चन्द्र का जन्म 23 नवम्बर सन् 1930 को गांव रलहन, तहसील दसूहा, जिला होशियारपुर पंजाब में हुआ था। रलहन उनके ननिहाल का गांव था। उनका पैतृक गांव था झोड़वाहा। जगदीश चन्द्र को अपने पैतृक गांव में ननिहाल में धर्मपाल नाम से पुकारा जाता था। करमचन्द उनके पिता थे और माता का नाम था अमरो उर्फ - प्रीतम देवी। जगदीश चन्द्र की शादी समा देवी से हुई थी। इनकी तीन संतानें - दो पुत्र और एक पुत्री क्रमशः अनुराग, पराग और आरती हैं।

जगदीश चन्द्र पंजाब के मोहजाल शासा से संबंधित ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे। पांच साल की उम्र में पिता की मृत्यु ने जगदीश चन्द्र को अत्यन्त व्यथित किया था। उनका बाल्यकाल ननिहाल रलहन में बीता था। ननिहाल में रहते समय उन्हें पास की हरिजन बस्ती में रहने वाले लोगों के साथ मिलना, उनके सुख-दुःख का सहभागी बनने का अवसर मिला था। विभिन्न छोटे-छोटे कार्य जैसे - चारा काटना, पशुओं की देखभाल करना, गोबर तथा कूड़ा उठाना आदि के लिए एक हरिजन परिवार में आना जाना होता था। यद्यपि उन्हें अक्सर हरिजन बस्ती में जाना पड़ता था पर कुछ पाबंदियों के साथ बस्ती में खाट पर नहीं बैठना, किसी को छूना नहीं, जलपान नहीं करना आदि संयोग से हरिजन बस्ती का सहपाठी अमरचंद उर्फ अमरु के यहाँ खाना खाया, खाट पर हरिजन बस्ती की सीलन भरी बद्बू, कच्ची दीवार और छतों के बीच टूटी-फूटी चारपाइयाँ, फटे पुराने बिस्तर, मिट्टी के घड़े आदि देखकर जगदीश

चन्द्र का किशोर मन व्यथित हो जाता था । लेखक ने खुद ही 'धरती धन न अपना' में इस संबंध में लिखा है - "मेरी किशोरवस्था मेरे ननिहाल गांव रलहन(पंजाब) में बीती । गांव का एक हरिजन परिवार मेरे नानाजी की जमीन जोतता था और इसी सिलसिले में मुझे उनकी बस्ती में जाना पड़ता था । हरिजनों की बस्ती में जाने पर कोई पाबंदी तो नहीं थी परंतु कुछ मर्यादाएँ थीं, कुछ परंपराएँ और सीमाएँ थीं जिनमें बंधकर जरूर चलाना पड़ता था । मेरे किशोर मन बंधनों की इस झीनी दीवार को तोड़कर हरिजनों की छोटी-छोटी सीलन भरी अंधेरी कोठरियों में छिपे रहस्यों को जानने के लिए हरदम व्यग्र रहता था ।.... गांव में चल रहे इस भेदभाव को देखकर मेरे किशोर मन में विद्रोह की ज्वालाएँ भड़क उठीं । परंतु इन्हें अभिव्यक्ति देने का कोई मार्ग दिखाई नहीं देता था ।"

(धरती धन न अपना -जगदीश चन्द्र - मेरे ओर से)

जगदीश चन्द्र की प्रारंभिक शिक्षा उनके ननिहाल के पास के गांव खुड्डा के राजकीय लोअर मिडिल स्कूल में हुई थी । उन्होंने डी.ए.वी. हाईस्कूल, दसूहा से सन् 1945 में दसवीं कक्षा पास की । फिर राजकीय कालेज, होशियारपुर से एस,सी, बारहवीं कक्षा पास करने के बाद व्यक्तिगत छात्र के रूप में जालंधर से बी.ए. डिग्री प्राप्त की तत्पश्चात उन्होंने डी.ए.बी. कालेज जालंधर से अर्थशास्त्र में एम.ए. की परीक्षा पास की ।

उच्च शिक्षा प्राप्ति के बाद उन्हें सरकारी नौकरी मिली । आप जीवन भर सरकारी नौकरी में अनेक जगहों पर रहे । 30 दिसंबर 1955 को आपने प्रेस इन्फॉर्मेशन ब्यूरो, नई दिल्ली में अपनी नौकरी की शुरुआत की । आपका नौकरी जीवन बहुत ही 'एडवेंचरस' रहा । भारत-पाकिस्तान युद्ध के दौरान उन्हें युद्ध क्षेत्र के पास सैनिकों के पास रहना और समस्त कार्यकलापों को देखने का मौका मिला था । एक समाचार संपादक होने के कारण उन्हें विभिन्न प्रकार के जोखिम भरे कार्य में शामिल होना पड़ता था । सितम्बर, 1985 में दूरदर्शन केन्द्र जालंधर से एक समाचार संपादक के रूप में आप सेवानिवृत्त हुए । सेवानिवृत्ति के बाद जगदीश चन्द्र जालंधर में अपने परिवार वालों के साथ रहते थे । उनका पारिवारिक जीवन बड़ा सुखद था । जगदीश चन्द्र घर की बातों में ज्यादा जुड़े नहीं रहते थे । वे अपना अधितर समय साहित्य सर्जना में उपयोग करते थे । वस्तुतः उन्हें साहित्य सर्जना में परिवारवालों की पूर्ण सहायता प्राप्त होती थी । इस संबंध में उनकी धर्मपत्नी क्षमाजी से एक व्यक्तिगत साक्षात्कार से पता चलता है - "जगदीश चन्द्र के लेखन कार्य के प्रति परिवार में किसी भी सदस्य का असहयोग कभी नहीं रहा, बल्कि कभी-कभार इनके लिखे पत्रों को पढ़कर खटकने वाली शब्दगत, वाक्यगत बारीकियों को बता दिया तो उसमें अपेक्षित सुधार हो जाता ।"

10 अप्रैल, 1996 को जालंधर में जगदीश चन्द्र का अचानक निधन हो गया । इनके निधन से

हिंदी साहित्य जगत् में जो शून्यता सृष्टि हुई यह शायद ही कभी भर सके । जगदीश चन्द्र एक सीधे-साद एवं बहुत ही जिंदादिल व्यक्ति थे । उनका व्यक्तित्व ऐसा था कि कोई भी उन्हें आसानी से प्रभावित नहीं कर पाता था । बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सबके प्रति उनका व्यवहार सदैव अनुकरणीय था । अतिथि सत्कार करने में उन्हें बहुत प्रसन्नता मिलती थी । इतने बड़े लेखक होते हुए भी उनके पास लेखकीय अहम लेशमात्र भी नहीं था । जीवन का यह सूक्ष्म पर्यवेक्षण बाद में उनके साहित्य सृजन की सामग्री बनी । साथ ही अर्थशास्त्र और मार्क्सवाद के अध्ययन से उन्होंने जीवन के यथार्थ को अच्छी तरह समझा । फलतः जीवन के साथ जुड़ा उनका साहित्य आगे चलकर समाज के सभी वर्गों की जनता से आदृत होने लगा । सं. तरसेम गुजराल, विनोद शाही के अनुसार “जगदीश चन्द्र जमीन से जुड़े कथाकार थे । आप हिन्दुस्तान के गांव के एक आम आदमी को अच्छी तरह जानते -समझते थे । उनके पास अर्थशास्त्र का गहरा अध्ययन व मार्क्सवाद की दृष्टि भी थी । लिहाजा परिवर्तन में उनका गहरा विश्वास था । घटित को भगवान की देन मान कर स्वीकार नहीं करते थे । सच को परख लेना और बिना किसी कट्टरता के अविचलित रहना उन्हें आता था । इतिहास उनके लिए फेफड़ों की ऑक्सिजन की तरह था ।”¹

वस्तुतः जीवन में उनका गहरा अनुभव था और यह अनुभव वैविध्यपूर्ण था । उन्होंने सच्चाई के साथ दलितों के जीवन की विसंगतियों को खुलासा किया है । विशेष रूप से ग्रामीण समाज और दलितों के जीवन के विविध पहलुओं पर जगदीश चन्द्र ने जिस प्रकार से चित्रित किया है यह अद्वितीय और भारतीय साहित्य के लिए गौरवपूर्ण अध्याय सृष्टि करता है । इस दृष्टि से जगदीश चन्द्र की हिंदी साहित्य में एक स्वतंत्र पहचान है ।

*** जगदीशचन्द्र की साहित्यिक कृतियाँ : एक संक्षिप्त परिचय :**

जगदीश चन्द्र का हिन्दी साहित्य में प्रवेश उर्दू के माध्यम से हुआ था । उनकी पहली रचना ‘पुराने घर’ उर्दू में लिखी गई कहानी थी । इसका प्रकाशन बंबई से छपने वाली उर्दू पत्रिका में हुआ था । सन् 1966 में प्रकाशित ‘यादों का पहाड़’ उनका पहला हिंदी उपन्यास है । इस उपन्यास को विशेष प्रसिद्धि नहीं मिली । पर इसके पश्चात् जगदीश चन्द्र को अपने उपन्यास ‘धरती धन न अपना’ पर जैसी प्रसिद्धि मिली शायद ऐसी प्रशस्ति हिंदी साहित्यकारों में से बहुत कम को मिली होगी । सैनिक जीवन के

1. सं. - तरसेम गुजराल, विनोद शाही, जगदीश चन्द्र - एक रचनात्मक यात्रा (पृ. -10)

अनुभवों को उन्होंने 'आधापुल' और 'टुयडा लाट' नामक दो उपन्यासों के द्वारा अभिव्यक्त किया है। इन दो उपन्यासों का प्रकाशन सन् 1973 और 976 में हुआ था। 'टुंडा लाट' उपन्यास का अंतिम भाग 'लात की वापसी' उपन्यास सन् 2000 में प्रकाशित हुआ था। 'धरती धन न अपना' की लोकप्रियता ने लेखक को इस उपन्यास की कथावस्तु को व्यापकता प्रदान करने को काफी प्रोत्साहित किया। फलतः लेखक के द्वारा इस उपन्यास के दूसरे खंड के रूप में 'नरक कुंड में बास' और अंतिम खंड में रूप में 'जमीन अपनी तो थी' नामक दो उपन्यास लिखे गये। इनका प्रकाशन क्रमशः सन् 1993 और 2001 में हुआ। इन कृतियों के अलावा लेखक की एक चर्चित कृति है। 'मुट्टी भर कांकर' 1976 में प्रकाशित इस महत्वपूर्ण कृति का दूसरा भाग 'घास गोदाम' शीर्षक उपन्यास जगदीश चन्द्र का 'पहली रपट' (कहानी संग्रह) 'नेता का जन्म' (नाटक) और 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' (रिपोतार्ज) भी प्रकाशित हुए हैं। इस प्रकार जगदीश चन्द्र ने अपनी महत्वपूर्ण कृतियों से हिंदी को समृद्ध किया है।

2.2 'धरती धन न अपना' : कथानक

जगदीश चन्द्र के महत्वपूर्ण उपन्यास त्रयी ('धरती धन न अपना', 'नरक कुंड में वास', 'जमीन अपनी तो थी') की पहली कड़ी 'धरती धन न अपना' एक बहुचर्चित उपन्यास है। फणीश्वर नाथ 'रेणु' के 'मैला अलंचल' के प्रकाशन के बाद जिस प्रकार 'रेणु' को हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट आंचलिक कथाकार के रूप में प्रतिष्ठा मिली, अनुरूप प्रतिष्ठा 'धरती धन न अपना' उपन्यास के प्रकाशन के पश्चात् जगदीश चन्द्र को मिली थी। वास्तव में ग्रामीण समाज पर आधारित तत्कालीन अछूत चमारों की दयनीय स्थिति पर आधारित यह उपन्यास एक अनोखा उपन्यास है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास का लेखन सन् 1955 में शुरू हुआ। पर बीच में कुछ वर्षों तक इसका लेखन कार्य बंद रहा। फिर लेखक ने अपने मित्र सोम आनन्द की प्रेरणा से इस उपन्यास का लेखन कार्य चालू किया। सन् 1968 में इसकी रचना पूरी हुई एवं राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली के द्वारा सन् 1972 में इसका पहला प्रकाशन हुआ। इस उपन्यास में कुल मिलाकर 49 अध्याय हैं। लेखक ने इस उपन्यास को अपने मित्र सोम आनन्द को समर्पण किया है। समर्पण के पृष्ठ में उन्होंने लिखा है - "सोम आनन्द को जिनके सहयोग ने मेरी सो रही सृजन -चेतना को पुनर्जागृत करके यह उपन्यास लिखने के लिए प्रेरित किया।"

आलोच्य उपन्यास का नायक है काली उर्फ कालीदास। उपन्यास की पूरी कथावस्तु काली पर केन्द्रित है। काली हरिजन (चमार) जाति का मातृ-पितृहीन बालक है। जिसे उसकी चाची ने पालपोस कर बड़ा किया है। काली के माता -पिता के साथ उसके चाचा का भी देहान्त हो चुका है।

उसका पिता साखा उस इलाके में एक प्रसिद्ध पहलवान था । चाची के प्रति काली का बड़ा आदर था । इतना सब होते हुए भी अचानक एक दिन काली घर छोड़ कर कानपुर चला जाता है । छह साल के बाद वह कानपुर से अपने गांव घौड़ेवाहल लौटता है । आलोच्य उपन्यास की कथावस्तु काली के घर लौटने की घटना से शुरू होती है । पौ फटने पा काली गांव के पास पहुँच जाता है । रास्ते में अपनी चाची को लेकर यानी चाची अभी तक जीवित है या नहीं इसी बात को लेकर उसके बन में कई शंकाएँ दिखाई देती है । पर चाची को जीवित पाकर उसका मन आनन्द में झूम उठता है । उधर काली की इतने दिनों के बाद घर वापसी न केवल चाची बल्कि मुहल्ले भर के लोगों के मन में खुशी का माहौल उत्पन्न करता है । वर्षों बाद काली को गांव में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता । गांव की स्थिति यथापूर्व देखकर वह चिंतित रहता है । काली कुछ पैसे कमाकर ले आया है । गांव में चौधरियों के मकान देखकर वह भी अपना मकान बनाना चाहता है । परंतु उसे भारतीय समाज की वास्तव स्थिति मालूम नहीं थी कि जहाँ गांव में चमारों के पास पैर रखने की भी जगह उनकी अपनी नहीं है, वहाँ वह अपना मकान कैसे बना सकता है । छजू शाह की बात से उसकी आँखें खुल जाती है, 'काली दास जिस जमीन की तुम बात कर रहे हो, वह जमीन तुम्हारी नहीं है । वह शामलाल(गांव के जमींदारों की सांझी) जमीन है । जब तक तू या तेरे वारिस(उत्तराधिकारी) इस गांव में रहेंगे, जमीन का यह टुकड़ा रिहायश के लिए तुम्हारा है । बाद में उसका मालिक गांव होगा ।' ('धरती धन न अपना' - पृ. -55)

इतना ही नहीं काली के गांव में चमारों की सामाजिक आर्थिक स्थिति तथा जातिगत विभाजन के कारण चमादड़ी में बसे चमारों के आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक शोषण के खिलाफ विद्रोह की ओर उत्प्रेरित करती है ।

चौधरी जीतू को लातों से लहलुहान करता है, अपमान जनक भद्दी गालियां देता है, पर ऐसी संकटमय परिस्थिति में कोई भी चमार मुँह नहीं खोलता, डर के मारे घर भाग जाते हैं । चमार की बस्ती में आर्थिक दुर्गति का शिकार कोई भी चमार इसके खिलाफ आवाज उठाने में समर्थ नहीं होता । गांव के महाजन, पटवारी, सरपंच, जमीनों के मालिक सभी मिलकर चमारों का शोषण करते हैं । कोई अगर इस शोषण के खिलाफ आवाज बुलंद करने का प्रयास करता तो सवर्ण समाज द्वारा इसे कुचल दिया जाता है । ये सारी घटनाएँ काली के हृदय में संघर्ष का बीज बोती हैं । इसके बाद काली का संघर्ष शुरू होता है, मकान तो निमित्त मात्र रह जाता है, असली लड़ाई तो दलित चमारों के सम्मान और अधिकार की हो जाती है । काली का अपनी स्थिति से ऊपर उठने का हर प्रयास चौधरियों को उनके खिलाफ एक चुनौती लगती है ।

प्रगति की ओर उठा काली का हर कदम जातिवादी सामंतवादी शोषकों द्वारा रोक दिया जाता

है । यहाँ तक कि काली की अपनी जाति के लोग भी चौधरियों के मोहरे बनकर उसकी राह में खड़े हो जाते हैं । उधर उसका सानों से परिचय हो जाता है । धीरे-धीरे आपसी घनिष्ठता के कारण दोनों में प्रेम हो जाता है । दोनों मिलकर घर बसाने का सपना देखते हैं । घरवाले इसका विरोध करते हैं । एक ही विरादरी के होने के कारण उन्हें विवाह की स्वीकृति नहीं मिलती है । इस बीच अचानक बीमारी से पीड़ित था उपयुक्त चिकित्सा के अभाव में काली की चाची प्रतापी की मृत्यु हो जाती है । काली बिलकुल अकेला हो जाता है । उसके कमाई के पैसे और चाची के गहने रुपये कोई पड़ोसिन चुरा कर ले जाती है । काली सब कुछ खोकर लालू पहलावन के यहाँ मजदूरी करता है । काली अन्याय के खिलाफ संघर्ष जारी रखता है । चौधरियों द्वारा बेगार पर काम कराये जाने पर काली उसका घोर विरोध करता है । काली की साहसिकता को देखते हुए बाकी लोग भी विरोध करते हैं । चमारों द्वारा बेगार का काम करने से बॉयकाट किया जाता है । काली कहता है - “ खायेंगे तो सब साथ, भूखे रहेंगे तो सब साथ । ” परंतु यह स्थिति अधिक दिन तक टिक नहीं पाती है । चमारों की भूखी विद्रोही आवाज को कुचल दिया जाता है । काली को अपना संघर्ष अधूरा छोड़कर यथास्थितिवादियों के दबाव में समझौता करना पड़ता है । चमार लोग जातिगत भेद-भाव और अन्याय -अत्याचार शोषण के खिलाफ संघर्ष करना चाहते हैं पर उन्हें सही दिशा और दर्शन नहीं मिलते हैं । उधर ज्ञानो गर्भवती हो जाती है और ज्ञानो का सपना पूरा नहीं हो पाता । जहाँ ज्ञानो को अपनी मां और भाई के हाथों जहर पीकर मरना पड़ता है वहीं काली हर तरफ से हार कर निराश गांव छोड़ भाग जाता है । उपन्यास का प्रारंभ काली के गांव लौटने की सुखद घटना से होता है और अपनी प्रेमिका की मृत्यु के बाद काली का गांव छोड़ भाग जाने से अंत होता है ।

2.3 विश्लेषण :

उपन्यास की कथा वर्ग संघर्ष की कथा है । एक ओर जमींदार किसान हैं तो दूसरी ओर मेहनतकश भूमिहीन मजदूर हैं । एक ओर धर्म के नाम पर स्वार्थपोषक पादरी अचिंतराम है तो दूसरी ओर भला इन्सान बनकर जीवित रहने वाला नंद सिंह । समाज के शोषक के रूप में छज्जूशाह तीरथराम, घड्डम चौधरी हैं जो वर्तमान व्यवस्था के शोषक हैं किन्तु सर्वहारा, शोषितों की आवाज को उठाने वाला डॉ. विशन दास भी है । काली और ज्ञानो उपन्यास के सर्वप्रमुख चरित्र के रूप में सामने आये हैं । सामाजिक अत्याचार एवं उत्पीड़न के प्रतिरोध का प्रतीक काली के सशक्त और स्वतंत्र व्यक्तित्व तथा संवेदनशील एवं दृढ़ स्वभाववाली ज्ञानो के संघर्ष के जरिये जगदीशचन्द्र दलित चमारों के जीवन की दर्दनाक स्थिति उभारने में और उसकी सच्चाई प्रकाश डालने में पूरी तरह सफल हुए हैं । उपन्यास की

कथा सुगठित है । साथ ही वातावरण का चित्रण भी सजीव हो उठा है । घोड़ेवाहा गांव में चमारों की ऐसी दयनीय सामाजिक, आर्थिक स्थिति के पीछे अशिक्षा, कुसंस्कार, अंधविश्वास और आपसी अन्तर्विरोध को लेखक ने बड़ी बारीकी से वर्णन किया है । गांव के चमारों की सामाजिक स्थिति के नग्न यथार्थ को चित्रित करने में लेखक सिद्धहस्त हैं । तभी तो इस संदर्भ में आलोचक शिव कुमार मिश्र ने कहा है - “ जगदीश चन्द्र ने ‘धरती धन न अपना’ में ‘रेणु’ की नहीं, ग्रामकेन्द्रित उपन्यासों की प्रेमचन्द की इसी यथार्थवादी परंपरा को ही विकसित किया है, प्रेमचंद से आगे जाकर उसे समृद्ध किया है - उसे और भी शक्ति संपन्नता के साथ आगे की रचनाओं के लिए एक चुनौती फेंकी है ।” (परंपरा की चरितार्थता - शिवकुमार मिश्र , जगदीशचन्द्र : एक रचनात्मक यात्रा, पृ.- 94, सं. तरसेम गुजराल)

वारस्तव में इस उपन्यास में पंजाब के दोआबा अंचल के दलितों की दयनीय आर्थिक स्थिति यानी दलित जीवन की त्रासद स्थिति को बड़ी सफलता से उभारा गया है ।

2.4 ‘धरती धन न अपना’ में चित्रित दलित जीवन :

‘धरती धन न अपना’ दलितों के जीवन यथार्थ पर केन्द्रित एक सफल दलित उपन्यास है । उपन्यास की कथा पंजाब के घोड़ेवाहा गांव की चमादड़ी अर्थात् चमार बस्ती पर आधारित है । इस बस्ती में रहने वाले शोषित, दलित वर्ग के जीवन और उनकी विविध समस्याओं ने लेखक को यह उपन्यास लिखने के लिए प्रेरित किया था । लेखक ने अपनी किशोरावस्था में चमारों की दुःख-दुर्दशा, शोषण, उत्पीड़न आदि को स्वयं अपनी आँखों से देखा था, महसूस किया था । आलोच्य पुस्तक के प्रारंभ में लेखक ने पुस्तक के प्रारंभ में ‘मेरीओर से ’ में अपने वक्तव्य के जरिये लिखा है - ‘मेरी किशोरावस्था मेरे ननिहाल के गांव रल्हन(पंजाब) में बीता । गांव का एक हरिजन परिवार मेरे नानाजी की जमीन जोतता था और इसी सिलसिले में भुड़े बस्ती में जाना पड़ता था

*

*

*

*

मैं यह सब देखकर बहुत ही उद्विग्न होता था कि आर्थिक अभावों की चक्की में युग-युगान्तरों से पिस रहे हरिजन अब भी मध्यकालीन यातनाओं को भोग रहे हैं । जिस भूमि पर वे रहते हैं, जिस जमीन को वे जोतते हैं, यहाँ तक कि जिन छप्परों में वे रहीं हैं, कुछ भी उनकी नहीं है । इन्हीं बातों को देखकर मेरे मिशोर मन की वेदना सहसा अपने सभी बांध तोड़कर फूट निकली और मैंने प्रस्तुत उपन्यास

लिखने का मूल प्रेरणा बिन्दु यही है ।”

उपन्यास में वर्णित चमारों की सामाजिक स्थिति कही नहीं जा सकती, चमादड़ी मुहल्ला गांव के अन्य मुहल्लों -महाजनों, नंबरदारों, गव्वयों, भोदियों, मिट्टो व चुनौतियों के मुहल्ले से अलग गांव से बाहर की ओर बनाया गया है । दलित लोग जहाँ रहते हैं, जिस जमीन पर उनका घर है, यह उनका अपना नहीं है । यह शामलात की जमीन है । जिस जमीन पर उनका घर है, उस पर उनका कोई अधिकार नहीं है । वे लोग छोटे और कच्चे मकान में रहते हैं । पूरे मुहल्ले में एक भी ऐसा कोठा नहीं था जिसमें पक्की ईंट लगी हो । पिछली बरसात के बाद इनकी अभी पोताई नहीं की गई थी इसलिए वे कमजोर ओर उनकी दिवारें खुरदरी नजर आ रही थी । (‘धरती धन न अपना’, पृ. -15)

छः साल के बाद कानपुर से लौटनेवाले काली को गांव की स्थिति में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता । लेखक ने निरपेक्षता से गांव की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया है । उन्होंने खुद ही कहा है - “मैंने सर्वथा निरपेक्ष रहकर भारतीय जीवन के इन कटे हुए सन्दर्भों का चित्रण किया है और कहीं भी अपना मन थोपने अथवा अपनी विचारधारा लादने का प्रयास नहीं किया ।”

(‘धरती धन न अपना’, मेरी ओर से)

काली के द्वारा गांव पहुँच कर देखी गई स्थिति का मार्मिक चित्रण करते हुए लेखक ने कहा है - काली औरतों के मैले-कुचले, फटे-पुराने कपड़ों और नाक सुड़सुड़ाते नंग-धड़ंग बच्चों को देखता हुआ सोचने लगा कि वह किस दुनिया में आ गया है । कई औरतों और बच्चों की पलकें गुलाबी थीं और उन पर एक भी बाल नहीं था और उससे निरंतर पानी बह रहा था । उनके शरीर और कपड़ों से पसीने की ऐसी दुर्गंध आ रही थी जिससे काली अपना परिचय खो चुका था ।” (‘धरती धन न अपना’ पृ. 17)

जगदीश चन्द्र जी प्रत्यक्ष द्रष्टा थे । उन्होंने दलित चमारों की दुःख-दुर्दशा का आँखों देखा चित्रण किया है । जो देखा और महसूस किया वह लेखनी से चित्रित किया है । चमनलाल जी ने इस संदर्भ में कहा है - “जगदीश चन्द्र ने बचपन से ही जीवन को बहुत निकट से देखा व महसूस किया । जीवन का यह सूक्ष्म पर्यवेक्षण बाद में चलकर उनके साहित्य की सामग्री बनी । जीवन के अनुभवों के साथ-साथ जगदीश चन्द्र ने अर्थशास्त्र व मार्क्सवाद के अध्ययन से जीवन के यथार्थ को अच्छी तरह से समझा भी । यथार्थ की इस से उन्होंने जीवन के द्वन्द्वात्मक रूप को पहचाना और अपने साहित्य में जीवन को सतही व एकपक्षीय रूप में नहीं, जटिल और द्वन्द्वात्मक रूप में प्रस्तुत किया ।

(चमनलाल, प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास, पृ.- 100)

चमादड़ी में सिर्फ एक ही लंबी और तंग गली है । मुहल्ले में एक भी ऐसा कोठा नहीं जिसमें

पक्की ईंट लगी हो । कानपुर से छः साल के बाद लौटे काली गांव की स्थिति देखकर उसके गांव लौटने की खुशी खत्म होने लगती है । लेकिन चाची के मोह से बंधा वह गांव में ही रहने का फैसला करता है । हालांकि उसका दोस्त जीतू कहता है- “ काली, तू तो इस गांव से चला गया था । दोबारा इस नर्क में क्यों आ गया ?” (धरती धन न अपना, पृ. 30)

शहर से कमाकर लाये थोड़े बहुत पैसे से काली अपना पक्का कोठा बनाने की सोचता है । यह बात गांव में हलचल पैदा कर देती है । तब काली को यह संकेत दिया जाता है कि धरती पर दलितों का कोई अधिकार नहीं है । गांव जब चाहे उन्हें बेघर कर सकता है । यहाँ गांव का अर्थ है सवर्ण समाज जो जमीनों का मालिक भी है और कानून भी चलता है । छज्जुशाह उसे स्पष्ट कर देता है कि मकान चमारों के अपने नहीं, मौरूसी हैं, गांव की सांझी जमीन, ‘शामलात’ पर बने हुए हैं । काली को यह अमानीय सामाजिक व्यवस्था व्यथित कर देती है । इतना ही नहीं पक्का मकान बनवाने के लिए जब काली छज्जुशाह से सलाह लेने जाता है तो छज्जुशाह बड़ी चतुराई से बात के दौरान काली को उसके चाचा के द्वारा उससे उधारी लिये गये रुपये की बात सुना देता है । वह काली से बकाया पच्चीस रुपये के साथ सोलह रुपये ब्याज भी वसूल लेता है ।

गांव में सवर्ण और असवर्ण यानी चौधरी और दलित कहलाने वाले चमारों के बीच कटु संबंध जो दिनों दिन भयंकर होता जा रहा है । चौधरियों की दृष्टि में चमार जाति के लोग कुत्ते, कमीने और सूअर से ज्यादा कुछ नहीं । चमारों की बस्ती में हमेशा ही चौधरी के आतंक और दहशत बनी रहती । बात-बात पर चमारों को गाली -गलौज करना, मार-पीट करना चौधरी अपना हत समझते हैं । चमार भी इसे चुपचाप सहन करते हैं, क्योंकि चौधरियों से गाली-मार खाना उनके जीवन का जैसे अभिन्न अंग या फिर उनकी किस्मत बन गया है । हरनाम सिंह चमादड़ी में आकर भद्दी गालियाँ देता है । निर्दोष जीतू की भयंकर पिटाई करता है । लेकिन वहाँ खड़े सारे के सारे चमार मुँह नहीं खोलते । लेखक ने इस दृश्य का वर्णन करते हुए कहा है - “ बीच में चौधरी हरमन सिंह बायें हाथ की दो उँगलियों से तहबन्द का पल्लू थामे हुए खड़ा गालियाँ दे रहा था । कोठों की दीवारों और दरवाजों के साथ मैली-कुचैली स्त्रियाँ भयभीत बच्चों को छातियों से लटकाये या अपनी टांगों में दबाये चौधरी और अपने मुहल्ले के मर्दों को देख रही थीं । बूढ़े और जवान सब ऐसे सिर झुकाये हुए थे जैसे राजा के दरबार में खड़े हों । उनके मैले तॉबे के रंग के शरीर मंद हवा में हिल रहे पत्तों की तरह कांप रहे थे । चौधरी हरीनाम सिंह सबको गालियाँ दे रहा था । लेकिन उनके मुँह पर ताले पड़े थे ।” (धरती धन न अपना -पृ. 20)

गांव में चमारों की सामाजिक स्थिति कुत्तों से भी गयी गुजरी है । यहाँ कुत्तों और चमारों की पहचान रखना मुश्किल है । चौधरी दलित चमारों को हमेशा अपनी जूती के नीचे दबाकर रखना चाहते

हैं । गांव में चमारों की दुर्गति कही नहीं जाती । तभी तो काली के सामने नंद सिंह कहता है - “गांव में चमार होना तो सबसे बड़ा पाप है । घोर लांछन है । दो कौड़ी का मालिक काशतकार अपने चमार को छटी का दूध पिला देता है । ... मुझे ‘चमार’ शब्द से ही नफरत है । मुझे कोई भी चमार कहे तो गुस्सा आ जाता है ।” (वही , पृ. 190)

पतित, अवहेलित, नीच कहे जाने वाले चमारों को हमेशा दबाये रखने के लिए चौधरियों का षडयंत्र शुरू से जारी रहता है । चौधरी हरनाम सिंह अपने जाति अहं की तुष्टि अमानवीय पद्धति का प्रयोग करता है । समाज में उच्च जाति के लोगों (सवर्णों) द्वारा असवर्णों को नीच जाति के लोगों को सामाजिक स्तर पर दबाये रखने के लिए कई सामाजिक, धार्मिक, संस्थानों का निर्माण किये गये हैं । ‘मनुस्मृति’ के जरिये कर्मकांड के आधार पर सदियों से दलित जातियों के लोगों का शोषण हो रहा है । चमादड़ी के हर चमार चौधरियों की झूठी साजिश में फंसकर जीवन भर तड़पते रहते हैं, दाने दाने तरसते हैं । इनका जीना दुभर हो जाता है । काली के द्वारा पक्का मकान बनाने का विरोध और निर्दोष जीतू पर निमर्म प्रहार इसका सबूत है । गांव में अस्पृश्यता यानी ऊँच -नीच का भेद-भाव इतना है कि ऐसा लगता है जैसे गांव में चमार होना पाप है । गांव में चमारों को दूध, लस्सी आदि भीख के रूप में ही मिल सकती है, पर चौधरी से दूध, लस्सी आदि चीजें खरीदी नहीं जा सकती । तभी तो पैसे होने के बावजूद काली अपनी चाची के लिए पाव भर दूध जुटा नहीं पाता । क्योंकि चमारों को दूध बेचना चौधरियों की शान के खिलाफ है - “ तेरी अक्ल ठिकाने है कि नहीं ? गरीब हूँ तो क्या हुआ, चौधरी तो हूँ, चमार के हाथ दूध बेचूंगा तो गांववाले क्या कहेंगे ?” (वही, पृ. 165)

बाढ़ के कारण चमादड़ी का कुँआ पानी में डूब जाता है । पादरी दरबाजा पर ताला लगाकर नल से पानी भरने नहीं देता है तो चमादड़ी की स्त्रियां पंडित-संतराम के कुँए पर जाती हैं, उसे पानी देने की विनती करती हैं । पर वह पानी देना तो दूर की बात है, डंडा उठाकर उनके पीछे भागता है । तब स्त्रियां भय से वहाँ भाग निकली । इस भगदड़ में कई नीचे गिर गई और उनके कच्चे घड़े टूट गये । पंडित संतराम गालियां देता हुआ चमादड़ी की ओर मुड़ने वाले रास्ते तक उनका पीछा करता रहा । (वी पृ.)

पंडित संतराम पाखंडी और लंपट है । वह चमार स्त्रियों को जात के नाम पर कुँए से पानी नहीं भरने देता, पर इन अछूत चमार स्त्रियों का भोग करता है । मकान बनवाने के लिए काली जब छज्जू शाह या मिस्त्री संत सिंह के पास जाता है तो सभी से उसे निरादर मिलता है । अस्पृश्यता की आड़ में सभी उसे घृणा की सृष्टि से देखते हैं । यहाँ तक कि काली के घर बनाने वाला मिस्त्री संत सिंह को प्यास लगने पर वह महाशय की दूकान पर पानी पीने जाता है और लौट कर कहता है - “ मैं चमारों का काम इसी दुःख के मारे नहीं लेता । अभी पानी पीकर आया हूँ, फिर प्यास लगने लगी है ।” (वही, पृ.140)

गांव में जातिवाद की जड़ें गहरी हैं । यहाँ तक कि धर्म परिवर्तन करने पर भी जाति वही बनी रहती है । अछूत जाति के लोग धर्म परिवर्तन कर सिख नहीं तो इसाई बन जाते हैं । नंद सिंह हिन्दु से सिख फिर बाद में इसाई बन जाता है, पर चमार होने की बुनियादी असलियत खत्म नहीं होती । जब नन्द सिंह बोलता है कि उसे चमार कहलाना पसंद नहीं तो बसंता कहता है - “ वाह -वाह नंद सिंह, तेरे सिर पर अभी सींग तो उगे नहीं - पगला तो कुछ भी बन जा लेकिन रहेगा चमार का चमार ही, जात कर्म से नहीं जन्म से बनती है, अगर चमार कहलवाना पसंद नहीं तो किसी और मां के पेट से जन्म लिया होता ।” (वही , पृ.-200)

धर्मान्तरण करने के बाद भी अछूत जाति के लोगों को तिरस्कार और अपमान से मुक्ति नहीं मिलती । मिस्त्री संता सिंह को प्यास लगने पर काली उसे नन्द सिंह के घर से पानी लाकर देने की बात कहता है तो संत सिंह बोलता है - “सिख बन जाने का यह मतलब तो नहीं कि वह चमार नहीं रहा । धर्म बदलने से जात तो नहीं बदलती ।” (वही, पृ.- 141)

समाज में नीच, अस्पायता कहे जाने वाले लोगों पर धर्म के नाम पर पाखंड रचाने वाले धर्म के ठेकेदारों का अमोनवीय आचरण भी देखने को मिलता है । यह देखने को मिलता है धर्म के ठेकेदार बिन स्वार्थ के गरीब सर्वहारा विवश अछूत जातियों के लोगों की मदद भी नहीं करते हैं । लेखक ने इस बात की सत्यता पर प्रकाश डाला है । बॉयकॉट के समय काली भूख से तड़प रहे चमारों के चूल्हा जलाने के लिए पादरी से अनाज मांगने जाता है । इस मजबूरी का फायदा उठाते हुए वह बोलता है - “ अनाज की तो बोरियाँ भिजवा दूँ लेकिन सवाल है रिश्ते का, अगर चमार इसाई बिरादरी में शामिल हो गये होते तो हमारा मिशन इन पर फांकों की कभी नौबत न उठाने देता ।” (वही, पृ.)

गांव की हरिजन बस्ती (चमादड़ी) में रहने वाली दलित चमारों की बहू-बेटियां का शारीरिक शोषण होता है । जाट, चौधरी अपनी पेट की भूख के समान यौन सुधा की तृप्ति करते हैं और उसके लिए किसी प्रकार की नैतिकता को आड़े नहीं आने देता । काली के यहाँ काम करते समय मिस्त्री संत सिंह से काली नन्द सिंह की बेटी पाशो के साथ उसके संबंध के बारे में पूछने पर उत्तर में कहता है, वही जो कुत्ते का कुतिया से होता है ।” गांव भर में चमार बहु-बेटियों से चौधरी -जाटों का अवैध संबंध देखने को मिलता है । चौधरी हरदेव लच्छो का शारीरिक शोषण करता है । बेचारी लच्छो अपने परिवारवालों के पेट की आग बुझाने के लिए अपना सर्वस्व लुटाकर बदले में कुछ नहीं ला पाती । मां घर से आटा उधार मांगने गई तो आटा ले आई । अमरु दगचा बेचकर आटा और गुड़ दोनों ले आया । लेकिन वह अपना सबकुछ लुटाकर भी खाली हाथ वापस आ गई ।” (वही, पृ.-103)

चमादड़ी में औरतें जब आपस में लड़ती हैं तो एक दूसरे की पोल खोलने में गौरव समझती

हैं । प्रीतो और प्रतापी के बीच के झगड़े तूत-मैं-मैं से यह स्पष्ट हो जाता है । चमार औरतों में ऐसा मन-मुटाव सवर्ण जाट चौधरियों के अन्याय, अत्याचार और शोषण को प्रोत्साहित करता है । जाट-चौधरियों का चमारों के प्रति अमानवीय व्यवहार जहाँ एक ओर उन्हें चैन की सांस लेने नहीं देता वहीं दाने दाने को तरवनेवाले इनकी आर्थिक स्थिति दिनों दिन बदतर होती जाती है ।

चमारों की आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय है । यहाँ तक कि उनके पास रोजी रोटी कमाने का ऐसा कोई साधन नहीं है , न तो उनके पास हल जोतने के लिए अपनी जमीन है और न ही खेत । वे केवल चौधरियों -जाटों के खेतों और घरों में अपने आर्थिक, शारीरिक शोषण को चुपचाप सहते हुए काम करने के लिए विवश है । प्रत्येक चमार किसी न किसी चौधरी के घर काम करने के लिए बंधा हुआ है । चमादड़ी का हर चमार आर्थिक रूप से चौधरियों पर निर्भर है । चमारों के कुछ बेगार करने वाले बंधुआ मजदूर हैं या दिहाड़ी पर काम करने वाले मजदूर हैं । उनकी स्त्रियां चौधरियों के घर में काम करती हैं । दिन, रात, खून -पसीना बहाने के बावजूद भी रोटी के एक-एक टुकड़े के लिए तरसते हैं । “काका, पक्का मकान कौन बनायेगा ? यहाँ तो एक समय की रोटी नहीं जुड़ती । ... मैं बाहर निकली थी कि किसी के घर से आटे की चुटकी मांग लाऊँ ताकि बच्चों के पेट में कुछ तो हो जाये ।”

(वही, पृ.-101) ।

चमादड़ी के यहाँ लोगों की आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय है कि जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को जूटा पाना भी इनके लिए संभव नहीं है । स्थिति इतनी बदतर है कि लोगों को घर का स्वाद तक पता नहीं । “नहीं काका.... मुझे तो घी देखे कई साल बीत गये हैं । बस यह समझें कि जब जीतू पैता हुआ था, तब आधा सेर घर खाया था । मैं तो घी का रंग और स्वाद भी दोनों भूल गई हूँ ।(धरती धन न अपना -पृ.)

* * * *

गांव में चौधरियों के अलावा महाजन, पटवारी, सरपंच, जमीनों के मालिक को मोहताज चमारों का शोषण करने में छज्जूशाह जैसा महाजन कोई मौका नहीं छोड़ता । काली जब पक्का मकान बनाने की योजना में छज्जू शाह के पास परामर्श लेने जाता है तब वह बड़ी अक्ल से बात कर काली को अपने जाल में फंसा लेता है । “तुम्हारे चाचा सिद्धु ने बारह साल पहले मकान बनाने के लिए मुझ से एक सौ रुपये उधार लिये थे । उससे ब्याज लेना तो मैंने मुश्किल नहीं समझा था क्योंकि वह अपना प्रेमी था । उसने असल रकम में से पच्चीस रुपये ही वापस किये थे और अभी भी पच्चीस रुपये बाकी थे कि

उसे मौत ने आ घेरा । बेचारा बहुत ईमानदार आदमी था आखिर तू उसी खानदान की निशानी है । जब कभी सिद्धू की याद आती है तो यह बही निकालकर देख लेता हूँ । इसमें उसका अंगूठा लगा हुआ है ।” (वही, पृ.39) चमादड़ी के चमार तमाम शारीरिक और मानसिक यंत्रणाओं को चुपचाप सह लेते हैं । वस्तुतः उनमें परस्पर फूट और चेतना का अभाव ही उनके जीवन की त्रासदी का प्रमुख कारण है । इतना ही नहीं इनमें संघर्ष का मनोबल उत्पन्न न होने का मूल कारण भी यही है । हाँ इनमें यद्यपि संघर्ष की शुरूआत होती है पर यह ज्यादा तक टिक नहीं पाता । दलितों की ऐसी दयनीय स्थिति में सुधार लाने के लिए न कोई पंचायत है, न कोई कानूनी सहायता, न कोई राजनीतिक या धार्मिक शक्ति मदद करती । बल्कि स्वार्थी लोग इसका फायदा उठाने में तैयार देखने को मिलते हैं । ईसाई पादरी अचिंतराम दलित चमारों के इस मौके का लाभ उठाकर उनके धर्म परिवर्तन कर उनकी सहायता करना चाहता है । पर उनके ईसाई बने बिना वह कोई मदद करना नहीं चाहता ।

इस प्रकार जगदीशचन्द्र ने अपनी पैनी दृष्टि से ‘धरती धन न अपना’ उपन्यास में दलितों के त्रासद जीवन का रेखांकन विविध दृष्टियों से किया है ।

2.5 ‘धरती धन न अपना’ : परिवेश और लोक जीवन :

देश -काल वातावरण को परिवेश कहा जाता है । डॉ. त्रिभुवन सिंह के अनुसार -“ किसी कवि अथवा समाज को ही उपन्यास अपने वर्णन का आधार बनाता है । वर्ण्य व्यक्ति अथवा समाज के आचार -विचार रहन-सहन, रीति-नीति, भाषा और उसके आस-पास घिरी परिस्थितियां ही देश-काल और वातावरण की संज्ञा धारण करती है । ”(डॉ. त्रिभुवन सिंह : हिंदी उपन्यास शिल्प और प्रयोग , पृ.-257 यहाँ देश का अर्थ है किसी स्थान विशेष । डॉ. सुमित्रा त्यागी ने देश शब्द का आशय स्पष्ट करते हुए कहा है -“ देश से अभिप्राय उपन्यासों के जीवन का उद्भव और विकास है । ”(डॉ. सुमित्रा त्यागी : हिंदी उपन्यास ; आधुनिक विचार धाराएँ, पृ. -155) प्रत्येक स्थान की भौगोलिक स्थिति होती है । किसी भी एक अंचल यानी ग्राम, नगर, कस्बा, प्रांत या एक भूखंड विशेष को स्थान कहा जा सकता है । पर्वत, नदी, वन, उपवन, पशु-पक्षर आदि । प्रकृति के विभिन्न उपादान स्थान के भौगोलिक परिवेश में आते हैं । इन सबके द्वारा स्थान के प्राकृतिक वातावरण का निर्माण होता है । प्रातः , संध्या, ऋतुओं, खेतों, खलिहानों आदि प्राकृतिक दृश्यों से वातावरण सजीव और सुन्दर बनता है । इन स्थान विशेष में रहने वाले आदिवासियों के रहन-सहन, वेशभूषा, खान-पान, आचार-विचार, भाषा तथा संस्कृति से यहाँ के सामाजिक वातावरण का निर्माण होता है । समाज राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का प्रभाव भी पड़ता है । इन सबके समाहार से परिवेश बनता है । किसी अंचल विशेष में

रहने वाला कोई भी आदमी वहाँ के परिवेश के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकता ।

भारत गांवों का देश है । भारत की आत्मा गांवों में बसती है । जगदीश चन्द्र ने गांव को 'धरती धन न अपना' उपन्यास की कथा के केन्द्र में रखा है । उन्होंने ग्रामीण जीवन की जिन्दगी, उनकी शक्ति और कमजोरियों को संपूर्णता के साथ यथार्थ रूप में उभारने का प्रयास किया है स्वतंत्रता के पश्चात् ग्रामीण जीवन में बहुत उथल-पुथल तो हुई पर समस्याएँ कम होने के बजाय बढ़ती गयीं । जगदीशचन्द्र ने इन समाज तत्त्वों को अपने उपन्यासों में उजागर किया है । उन्होंने ग्रामीण जीवन के वास्तविक यथार्थ रूप को देखा है और महसूस भी किया है । इसलिए ग्रामीण जीवन का कोई भी अंग उनकी आँखों से ओझल नहीं हो पाया है । वस्तुतः जगदीशचन्द्र ने ग्रामीण जीवन के प्रत्येक पहलू का इतना सूक्ष्म रेखांकन किया है कि शायद पहले किसी उपन्यासकार ने ऐसा किया हो । जगदीशचन्द्र ने प्रेमचन्द की परंपरा को न सिर्फ आगे बढ़ाया है बल्कि एक नई दिशा प्रदान की है । इस संबंध में डॉ. पुष्पपाल सिंह ने कहा है - " मेरी दृष्टि में प्रेमचन्द के बाद ग्रामीण जीवन का उत्कृष्ट सशक्त और प्रामाणिक चित्रण जिन चन्द लेखकों ने प्रस्तुत किया उनमें जगदीशचन्द्र का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है । जगदीशचन्द्र जी की अपने कथ्य पर इतनी मजबूत पकड़ और कथा कहने की शैली -सलीका इतना प्रभावी रहता है कि वह कहीं भी ड्राइंग रूम से निरीक्षण चित्रण भी नहीं रहता अपितु वे जिस परिवेश को अपनाते हैं, उसमें पूरी तरह रच-बस कर उसके अंग बनकर उसमें अंतरंग का सूक्ष्म अज्ञाँक्षि प्रामाणिक चित्रण दस्तावेजी के रूप में करते हैं । यद्यपि उनका कथा -परिवेश होशियारपुर -जालंधर के क्षेत्र का है किन्तु वह चित्रण इतनी विराटता लिए होता है कि वह इस अंचल का चित्र होते हुए भी आंचलिक मात्र नहीं रहता, अपितु पूरे भारतीय परिवेश से साक्षात् करा देता है । =====

कथा का केन्द्र घोड़ेवाहा गांव पंजाब के अंचल विशेष दोआबा के होशियारपुर जिले का है । दो नदियों के बीच के क्षेत्र को दो आबा कहा जाता है । "जहाँ जहाँ देश में विशेषतः उत्तर भारत में दो नदियों के बीच का प्रदेश आबाद होगा, उसे संभवतः दोआबा कहा जाता होगा । जैसे मालवा पंजाब का अंचल विशेष है और मध्य प्रदेश का भी । पंजाब का यह दोआबा क्षेत्र विभाजन पूर्व पंजाब में भी दो आबा ही कहलाता था । एक पास्तानी पंजाबी उपन्यासकार ने इसी क्षेत्र को आधार बनाकर 'दो आबा' शीर्षक से पंजाबी उपन्यास की रचना भी की है ।"

'धरती धन न अपना' में दोआबा क्षेत्र में होशियारपुर जिले के घोड़ेवाहा गांव का चित्रण हुआ है । होशियारपुर क्षेत्र हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्र की गोद में बसा है । यहाँ एक प्रकार की पहाड़ी नदी या नाला देखने को मिलता है । इसे चो कहा जाता है । कभी चो सूखा रहता है तो कभी पानी से भरपूर होकर भयंकर बाढ़ का रूप धारण करता है । घोड़ेवाहा गांव में चो के इस भयंकर रूप से पीडित लोगों की दयनीय स्थिति कही नहीं जा सकती । लेखक ने चो के भयंकर रूप का वर्णन करते हुए लिखा है -

“ दो पहर तक चो में पानी और भी बढ़ गया । गांव के चारों ओर पानी ही पानी था । बड़े रास्ते पर पानी स्कूल तक जा पहुँचा था । तकिया चो का एक हिस्सा बन गया था और वहाँ भी पानी की लहरें उठने लगी थीं । तकिए के कोठे की छत बहुत पहले ही गिर चुकी थी । चो ने एक दीवार भी गिरा दी । बहते पानी का शोर गांव के दूसरे सिरे पर भी सुनायी दे रहा था । ” (‘धरती धन न अपना’, पृ. 216)

घोड़ेवाहा गांव की चमादड़ी में रहने वाले चमारों की स्थिति अत्यंत सोचनीय है । यहाँ के रहनेवाले चमार जिस जमीन पर रहते हैं, वह उनकी जमीन नहीं है । वह जमीन शामलात की जमीन है । उस जमीन पर उनका कोई अधिकार नहीं है । छोटे और पक्के मकानों में सारे चमार रहते हैं । पूरे मुहल्ले में एक भी पक्का मकान नहीं है । छह साल बाद काली गांव की जैसी थी वैसी स्थिति देखकर चिंतित हो जाता है । “काली ने सीढ़ी के पास ही छत पर खड़े होकर चमादड़ी के कोठों पर नजर दौड़ायी । मटमैले रंग के कच्चे और छोटे-छोटे कोठे के दायें किनारे तक फैले हुए थे । मुहल्ले के अंदर एक छोटा-सा चौगान था जिसके बीचों बीच एक बेरी थी । --- मुहल्ले के बाहर गोबर और कूड़े के ढेर थे । और एक -दो छोटे छप्पर भी , जिनका पानी मई की धूल से खुश्क हो चुका था । (धरती धन न अपना, पृ. -१५)

गांव में चमारों की सामाजिक स्थिति कुत्तों से भी गयी गुजरी है । चमारों को चौधरी लोग कुत्ते, कमीने और सुअर से ज्यादा कुछ नहीं समझते हैं । वे बात-बात पर चमारों को गाली-गलौज, मारपीट करते हैं । चमारों की बस्ती में उनके आतंक और दहशत बनी रहती है । घोड़ावाहा में अस्पृश्यता की गहरी जड़ हैं । पंडित संतराम जो चमार स्त्रियों को जात के नाम पर कुँए से पानी तक नहीं भरने देता, इतना पाखंडी और लंपट है कि उन्हीं अछूत स्त्रियों का भोग करता है । गांव में जातिवाद की जड़ें इतनी गहरी हैं कि धर्म परिवर्तन करने पर भी वही बनी रहती है । चमादड़ी की स्त्रियां पंडित संतराम के कुँए पर जाती हैं, पर वह पानी देने की बात तो दूर उन्हें डंडा उठाकर गालियां देकर भगा देता है । पूरे गांव में जातिवाद को लेकर भयंकर स्थिति देखने को मिलती है । घोड़ावाहा गांव की चमादड़ी के दलित चमारों की बहू-बेटियों का शारीरिक शोषण हमेशा जाट -चौधरियों से किया जाता है । जहाँ अवहेलित चमार इसे अपना भाग्य समझ कर नीरव रहते हैं । वहीं जाट-चौधरी इसे अपना हक समझते हैं । इस घृण्य समाज विरोधी अपकर्म के लिए प्रतिवाद का स्वर सुनाई नहीं देता । चौधरियों का दलितों के प्रति अमानवीय व्यवहार उनके सामाजिक जीवन को तहस नहस कर देता है । हरिजन बस्ती में साईकिल खरीदकर चलाने वाले नाथ पर अन्याय - अत्याचार भगवान सिंह से उसकी पिटाई, उसकी बेइज्जती किये जाने पर भी किसी हरिजन से आपत्ति न करना, उलटा उसीको डाँट-डपट करना जैसी बात हरिजन चमारों में अशिक्षा और सचेतनता की कमी का कारण है । अपना खून -पसीना एक कर चौधरियों के खेत में काम करने वाले चमारों को भर पेट खाना नहीं मिलता । यहाँ तक बाढ़ के दिन तक

बांध बाधने का काम करने के बाद भी चौधरी दिहाड़ी नहीं देते हैं, उलटा उन्हें गालियां देते हैं । विरोध का स्वर सुनाई देने पर चमारों में एकता और सचेतनता की कमी के कारण यह आवाज धीमी पड़ जाती है । लेखक ने ऐसी ही कई घटनाओं के जरिए चमादड़ी के सामाजिक परिवेश का यथार्थ चित्र उभारने का सफल प्रयास किया है ।

चमारों के पास कमाने का कोई साधन नहीं है । न तो उनके पास हल जोतने के लिए अपनी जमीन है और न ही खेत । उन्हें विवश चौधरियों के खेतों और घरों में आर्थिक और शारीरिक शोषण के शिकार होकर काम करना पड़ता है । इन अवहेलित अछूत चमारों के लिए जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करना भी संभव नहीं हो पाता । आर्थिक निर्भरता चमारों को किस हीन दशा तक पहुँचाती है, उनमें उनका विरोध करने की शक्ति या चेतना नहीं जगती । वस्तुतः जातिवादी प्रवृत्तियों के अमावीय पहलुओं और अपने भीतर अमावीय प्रवृत्तियों को पनाह देनेवाले सवर्ण समाज की असाधारण धर्मांधता, कट्टरता और स्वार्थ चमारों के त्रासद जीवन के मूलभूत कारण हैं । जातिगत भेदभाव तथा सवर्णों के अन्याय अत्याचार के विरोध दलितों में संघर्ष करने की इच्छा तो है और यह इच्छा दिशादर्शी विचार धारा और दर्शन के अभाव में फलवती नहीं हो पाती । फलतः वे लोग संघर्ष को अधूरा छोड़कर रह जाते हैं । दलितों में संघर्ष की चेतना के विषय में यद्यपि काली और ज्ञानो दोनों का प्रयास जारी रहता है पर उपयुक्त परिवेश की कमी संघर्ष की असफलता का कारण बनती है । चमार जाति में अंतर्विरोध भी इस असफलता का और एक कारण है । यहाँ तक ज्ञानो की हत्या के लिए चमार जाति के अपने अंतर्विरोध भी जिम्मेदार हैं ।

समाज में धर्म के आधार पर जाति आर्थिक दुर्गति का एक प्रमुख कारण है । धर्म के आधार पर जाति व्यवस्था का निर्धारण आर्थिक व्यवस्था को निर्धारित करता है । घोड़ावाहा गांव में चमादड़ी के दलित चमारों की आर्थिक दुर्गति के पीछे यह देखने को मिलता है । फलतः वे लोग दब कर ही रहते हैं । घोड़ावाहा में धार्मिक आधार पर जाति व्यवस्था को कायम रखने में जाट और चौधरी जैसे सवर्ण लोगों की अहम् भूमिका देखने को मिलती है । जाति व्यवस्था के धार्मिक आधार पर तीखा प्रहार करते हुए बाबा साहेब आम्बेडकर ने कहा है - “ जो वर्णों पर आधारित है, न कि व्यक्तियों पर, यह यह व्यवस्था है, जिसमें वर्णों को एक दूसरे के ऊपर श्रेणीबद्ध किया गया है । यह एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें वर्णों की प्रतिष्ठा तथा कार्य निर्धारण निश्चित है । किन्तु समाज - व्यवस्था एक कठोर सामाजिक प्रणाली है । इस बात से उसे कोई लेना देना नहीं कि किसी व्यक्ति के पद और प्रतिष्ठा में अपेक्षाकृत परिवर्तन हो, लेकिन वह जिस वर्ण में पैदा हुआ है, उस वर्ण के सदस्य के रूप में उसकी सामाजिक स्थिति दूसरे वर्ण के दूसरे व्यक्ति के संदर्भ में किसी भी तरह से प्रभावित नहीं होगी । उच्च वर्ण में जन्मे और निम्न वर्ण में जन्में व्यक्ति की नियति उसका जन्मजात वर्ण है । ” (बाबा साहेब आम्बेडकर संपूर्ण

वांगमय -खंड-6, पृ. -146) वस्तुतः धर्म के आधार पर प्रचलित जाति व्यवस्था के अंतर्गत आने वाले हीन कहे जाने वाले अछूत चमारों को गांव के महाजन, चौधरी, जमीनों के मालिक सभी मिलकर शोषण करते हैं । उनका सामाजिक और आर्थिक परिवेश उन्हें चैन से जीने नहीं देता ।

2.6 'धरती धन न अपना' में चरित्र -चित्रण :

वैसे कथावस्तु और पात्र उपन्यास के दो प्रमुख तत्व हैं, किन्तु आधुनिक उपन्यास में कथावस्तु को विशेष महत्व नहीं दिया जाता । अब चरित्र कथा का संदेश वाहक न होकर लेखक के सत्य और अनुभूति का सन्देश वाहक बन गया है । इस संदर्भ में उपन्यासकार प्रेमचन्द का कथन -“ मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ । मानव चरित्र पर प्रकाश डालना ही उपन्यास का मूल तत्व है ।” वस्तुतः उपन्यास का वास्तविक विषय मानव है । मान को उसके जीवन से अलग करके नहीं देखा जा सकता । 'धरती धन न अपना' उपन्यास में अछूतों के जीवन की सारी स्थितियों का चित्रण सजीव हो उठा है । उपन्यास में वर्णित विविध परिवेश विभिन्न चरित्रों के घात- प्रतिघात और व्यवहार से बड़ा जीवन हो उठा है । वस्तुतः जगदीशचन्द्र की पैनी दृष्टि और अभिनव सृजनशैली ने उपन्यास को एक नया रूप प्रदान किया है ।

जगदीशचन्द्र ने चरित्र -चित्रण में एक विशेष शैली के धनी हैं । उन्होंने अपनी विशिष्ट दृष्टि से चरित्रों का चित्रण किया है । उनके चरित्रों में सहज मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा की गई है । कोई चरित्र मात्र काल्पनिक न होकर उनके यथार्थ अनुभव पर आधारित है । उन्होंने आलोच्य उपन्यास में यथार्थ परिवेश में यथार्थ मानव को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है । फलतः यह उपन्यास कालजयी बन सका है । इस अध्याय में 'धरती धन न अपना' उपन्यास के कुछ पात्र-पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उभारने का प्रयास किया गया है ।

(क) मुख्य - चरित्र

* काली :

कालीदास 'धरती धन न अपना' उपन्यास का नायक है। वह पाखे का बेटा है। बचपन से वह पितृ-मातृ हीन है। उसके निःसंतान चाचा-चाची उसे पालपोष कर बड़ा करते हैं। इसलिए काली उसका पुत्र भी है। वह उनके खानदान की एकमात्र निशानी भी है।

काली का पिता माखा पहलवानी करता था। गांव में उसकी बड़ी इज्जत थी। पर वह काली को जी भर देखने से पहले उसकी मृत्यु हो गई। उधर दो साल बाद प्लेग की बीमारी से काली की मां और हैजे से चाचा मौत के शिकार हो जाते हैं। ऐसी हालत में चाची प्रतापी ने काली को सारी मुसीबतें उठा कर पाला। लेकिन घर में आर्थिक स्थिति दिनों दिन इतनी बदतर होती जा रही कि एक दिन काली घर से चोरी-चोरी फटेहाल में घर से भाग गया। छह साल तक चाची प्रतापी को काली के बारे में कोई खोज खबर नहीं मिली। इस बीच काली कानपुर पहुँच कर वहाँ कड़ी मेहनत से कुछ कमाता है। फलतः उसकी आर्थिक स्थिति में धीरे-धीरे सुधार आता है। वहाँ अकेले रहने के कारण उसे अकेलापन महसूस होता है। उसे हमेशा अपनी चाची प्रतापी की याद सताती है। कुछ पैसे जमा करने के बाद एक दिन वह चाची के मोह के कारण अपने गांव लौट आता है। गांव लौट आने के पीछे उसका यह उद्देश्य रहा कि बुढ़ापे में वह अपनी चाची को कुछ सुख दे सके। लेकिन उसकी यह भावना फलवती नहीं हो पाती। छः साल बाद गांव लौटकर जब काली यह देखता है कि इस बीच गांव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, गांव में पहले की भाँति छूत-अछूत का भेदभाव बरकरार है तो काली के मन में गहरा असंतोष पैदा होता है। उसका जी चाहता है वह वापस कानपुर चला जाए। वहाँ बैठे-बैठे काली को भय महसूस होने लगा। उसके दिल में छः साल के पश्चात् गांव लौटने की खुशी खत्म होने लगी और उसका जी चाहा कि वह उल्टे पांव ही कानपुर वापस चला जाये।" ('धरती धन न अपना', पृ. -9) इतना सब होते हुए भी वह चाची के मोह से बंधा गांव में ही रहने का फैसला करता है।

काली शुरू से गांव की सामाजिक स्थिति से परिचित है। फिर भी वह शहर में कमाकर लाए थोड़े बहुत पैसे से अपना पक्का कोठा बनाना चाहता है। पक्काकोठा बनवाने की उसकी घोषणा पूरे गांव के सवर्णों में हलचल पैदा कर देती है। गांव के चौधरियों को यह चुनौती देने जैसी हरकत लगती है। उधर काली को बताया जाता है कि जिस जमीन पर चमादड़ी के लोग रहते हैं वह उनकी नहीं है वह गांव की सांझी जमीन है। छजू शाह कहता है - "कालीदास, जिस जमीन की तुम बात कर रहे हो वह

जमीन भी तुम्हारी नहीं है । वह शामलात (गांव के जमींदारों की सांझी जमीन) जमीन है । जब तक तू या तेरे वारिस (उत्तराधिकारी) इस गांव में रहेंगे, जमीन का यह टुकड़ा रिहायश के लिए तुम्हारा है । बाद में उसका मालिक गांव होगा । वह तेरी मालकियती जमीन नहीं है, मौरूसी जमीन है ।” (‘धरती धन न अपना’, पृ. -55) वस्तुतः गांव और कुछ नहीं, सवर्ण समाज है । वही सवर्ण समाज जमीनों का मालिक है । गांव में सवर्णों का कानून चलता है । काली को यह अहसास होता है कि धरती से महरूम है ।

चमादड़ी के अन्य चमारों की तुलना में काली में चेतना अधिक विकसित है । उसका व्यवहार अन्य दलितों से भिन्न प्रकार का है । उसके व्यवहार में उसकी मानवीय अस्मिता की पहचान शामिल है । चमादड़ी में काली का पक्का कोठा बनाने की घोषणा दलितों में सामान्य मानवीय जीवन जीने की लालसा जगाती है । काली का आत्म सम्मान युक्त व्यवहार न केवल चमार युवकों में मानवीय इच्छाएँ जगाने लगता है बल्कि चौधरियों की शोषण व्यवस्था में बाधाएँ ला देता है । इतना ही नहीं चौधरी हरनाम सिंह जैसे शोषक दमनकारी व्यक्ति और मंगू चमार जैसे चौधरियों के गुलामों को काली का आत्मसम्मान युक्त व्यवहार बहुत खटकता है । काली आँखें मूंद कर अन्याय सहनेवाला व्यक्ति नहीं है । चमारों में कई लोग निर्दोष जीतू की भर्त्सना करते हैं । अपने जाति भाइयों की ऐसी निर्दयता देखकर काली को गुस्सा आता है और वह अपनी चाची से कहता है - “अगर जीतू की जगह मैं होता तो चौधरी की बांह मरोड़ देता ।” (‘धरती धन न अपना’, पृ.-27) काली में गहरी आस्था और विश्वास है । चौधरियों का बेटा हरदेव कबड्डी खेल में जानबूझ कर काली का कूल्हा तोड़ देता है । मंगू बार-बार उसके साथ बेकार ही झगड़ा करता है । छज्जु शाह मौका पाकर काली से चाचा के बकाया उधार के नाम पर पैसा दबोच लेता है । इन सारे कारणों से काली को कई बार निराश होना पड़ता है । पर वह हिम्मत हार कर बैठता नहीं । कभी उसकी चाची प्रतापी या तो कभी ज्ञानो उसे हिम्मत देती रहती हैं । काली के व्यक्तित्व के सबल पक्ष है उसकी शारीरिक और मानसिक दृढ़ता । काली के पिता माखा एक पहलवान हैं । काली एक पहलवान का बेटा तो है, साथ ही स्वयं बलिष्ठ शरीर धारण करने वाला हड्डा-कट्टा जवान भी है । विविध घटनाओं में उसकी शारीरिक क्षमता का परिचय देखने को मिलता है । चौधरी और चमारों के संघर्ष के समय काली अपने दृढ़ और धैर्यशील व्यक्तित्व की पराकाष्ठा प्रदर्शन करता है । उसमें त्याग और आत्मविश्वास की भावना है । हड़ताल के समय वह स्वयं भूखा रहकर अपना सारा अनाज प्रीतो को देते हुए बोलता है, “चाची ले बच्चों को रोटी पकाकर खिला । यह मुसीबत हमने मांगी नहीं है । हम पर जबदस्ती टूंसी गई है । हौसला रखो अगर रोटी खाएंगे तो सब खाएंगे, भूखे रहेंगे तो सब रहेंगे । (‘धरती धन न अपना’, पृ. -249)

काली में गहरा आत्म सम्मान बोध देखने को मिलता है । चौधरियों के द्वारा चमारों के प्रति

किये जाने वाले अन्याय -अत्याचार, अपमान, नीच -अछूत चमार जैसे शब्दों का व्यवहार काली से सहा नहीं जाता । उसमें क्रोध की भावना उठती है । इतना ही नहीं उसके कट्टर विरोधी मंगू को चौधरी के द्वारा दी जाने वाली 'कुत्ता-चमार' जैसी भद्दी गालियां उसके हृदय में चुभन उत्पन्न करती हैं । वह तिलमिलाता है । वस्तुतः वह सामाजिक क्रांति लाना चाहता है । गांव के महाज, पटवारी, सरपंच और जमीन मालिक सभी मिलकर चमारों का शोषण करते हैं । काली को इन सभी से जूझना पड़ता है । काली पहला व्यक्ति है जो चौधरियों के साथ दिहाड़ी के प्रश्न पर बेगार का विरोध करता है और समाज में क्रांति पैदा करना चाहता है । वह सशक्त स्वर में बोलता है, मैं बिना पैसे के काम नहीं करूंगा ।'' ('धरती धन न अपना', पृ. -235) इस बात पर सारे चौधरी जब गाली देते हैं तो काली उत्तेजित स्वर में कहता है - तुम लोगों को जमीनों का अहंकार है हमने तुम्हारी बहुत बातें सुनी हैं । लेकिन हर चीज की हद होती है । हम पत्थर नहीं हैं, हम भी इन्सान हैं ।'' ('धरती धन न अपना', पृ. -235-236)

काली का इस प्रकार डटकर जवाब देना सामाजिक क्रांति को आगे बढ़ाने वाला कदम है । वस्तुतः काली के पास न तो ट्रेड यूनियन संगठन की चेतना है और न ही संघर्ष की कोई दृष्टि । फिर भी दलित चमारों में क्रांति की चेतना उत्पन्न कर उन्हें एक नया जीवन प्रदान करने में यह प्रयास स्तुत्य माना जाता है ।

काली के चरित्र में सबल पक्षों के साथ-साथ कुछ दुर्बल पक्ष भी हैं । यह दुर्बल पक्ष उसकी चेतना में है । काली की चाची प्रतापी जब बीमार पड़ती है तब वह डॉ. बिशन दास से दवाई लाता है । पर चाची ठीक न होने पर वह ओझा के चक्कर में फंसकर डाक्टरी दवा छोड़कर झाड़-फूंक करवाने लगता है । फलतः चाची को मृत्यु का शिकार होना पड़ता है । इसी घटना से पता चलता है कि यद्यपि काली चमारों में थोड़ा बहुत आगे है फिर भी वह पिछड़ेपन का शिकार है । ज्ञानो की मृत्यु भी काली के चरित्र के दुर्बल पक्ष को उजागर करती है । काली का ज्ञानो से गहरा प्रेम है । चमादड़ी में इन दोनों के प्रेम और विवाह को लेकर तीव्र विरोध दिखाई देता है । इस बीच ज्ञानो गर्भवती बन जाती है । धीरे-धीरे समाज में काली की प्रतिष्ठा खत्म होने लगती है । ऐसी परिस्थिति में काली को समझना चाहिए था कि चमादड़ी में रहते हुए ज्ञानो से उसका विवाह संभव नहीं है । इसलिए उसे गांव छोड़कर ज्ञानो को लेकर अपने परिचित शहर कानपुर भाग जाना जरूरी था । वह चाहता तो अपने प्रेम को कुर्बान कर ज्ञानो की प्राण रक्षा कर पाता । परंतु काली कुछ प्रतिकार किये बिना कायर की भाँति चुपचाप रह जाता है । उधर लालू पहलवान काली को नौकरी से निकाल देता । गांव में काली और ज्ञानो के प्रेम को लेकर दिनों दिन स्थिति बदतर होती जाती है । ऐसी स्थिति में ज्ञानो को उसकी मां और भाई जहर देकर मार डालते

हैं । काली गांव छोड़कर भाग जाता है । यह उसकी कायरता का परिचायक है ।

वस्तुतः काली अपने वर्ग और समुदाय का प्रतिनिधि चरित्र है । अपने वर्ग के भीतर उसकी अपनी विशिष्ट छाप है । उसमें अपनी व्यक्तिगत विशिष्टताएँ शुरू से बनी रहती हैं । तत्कालीन परिस्थितियाँ ही उसकी नियति की निर्णायक हैं और उन परिस्थितियों में उसका दुःखद अंत उसकी नियति है ।

✳ ज्ञानो :

‘धरती धन न अपना’ उपन्यास का दूसरा प्रमुख चरित्र है ज्ञानो । वह जस्सो की बेठी है । मंगू चमार उसका भाई है । उपन्यास में ज्ञानो का चरित्र काली से भी कई अर्थों में अधिक दृढ़ देखने को मिलता है । जहाँ ज्ञानो का भाई मंगू सवर्ण जाति के प्रतिनिधि चौधरियों की गुलामी करता है और अपने जाति भाइयों को हानि पहुँचाता है वहीं ज्ञानो चौधरियों के सारे अन्याय -अत्याचारों का डट कर विरोध करती है । उसकी नस- नस में विद्रोह की भावना है । वह जन्मजात विद्रोहिणी है । इस स्वभाव से ही वह काली का मन जीत लेती है । इस बीच उधर उसका भाई मंगू काली का सबसे बड़ा शत्रु बन जाता है । जीतू निर्दोष है । उस का कोई कसूर नहीं है । पर चौधरी उसके माथे पर सारे दोष लादकर उस पर निर्मम प्रहार करता है । इस काम में मंगू आग पर घी डालने का काम करता है । ज्ञानो इस अन्याय को बर्दास्त नहीं कर पाती । वह चौधरियों को गालियां देती है । वह संवेदनशील व मानवीय लड़की है । जीतू चौधरियों की पिटाई से घायल होने के बाद ज्ञानो उसकी देखभाल करती है । अपने भाई के अमानवीय व्यवहार से उसके मन में घृणा उत्पन्न होती है । वह अपने भाई को गालियां देती है । हालांकि उसे मालूम है कि इसके बदले भाई मंगू जमकर उसकी धुनाई करेगा । फिर भी उसकी निडरता और दृढ़ता उसे अन्याय के खिलाफ लड़ने में सामर्थ्य प्रदान करती है । इतना ही नहीं उसके साहस और शक्ति के सामने कोई भी चौधरी उसे छेड़ने या तंग करने में समर्थ नहीं हो पाता ।

छह साल बाद काली और ज्ञानो एक दूसरे को अच्छी तरह देखते हैं । काली कानपुर जाने से पहले ज्ञानो जो उस दिन एक बेबाक निडर, झगड़ालू लड़की थी । आज वह एक भरपूर यौवनोदीप्त चेहरेवाली युवती है । सर्वोपरि उसका विद्रोह स्वभाव काली को चकित कर देता है । उधर चमादड़ी में काली के द्वारा पक्का कोठा बनवाने की बात से ज्ञानो न केवल खुश होती है बल्कि इस कार्य के लिए वह काली को उत्साहित करने लगती है । ज्ञानो में काली के प्रति गहरा प्रेम है । ज्ञानो और काली के प्रेम से जाति भाइयों में विरोध होने लगता है । काली के प्रति मंगू का आचरण ज्ञानो को काफी दुःख प्रदान करता है । ज्ञानो अपने भाई मंगू के द्वारा काली का विरोध एवं काली के प्रति उसके मन में रही शत्रुता का अंत करना चाहती है । इतना ही नहीं ज्ञानो की संवेदनशीलता चौधरियों द्वारा लांछित, अपमानित निराश

चमारों में आशा की किरणें जगाती है । गांव में कई हैरान -हरकतों का सामना करते हुए काली के मन में जब निराशा छा जाती है और वह गांव छोड़ भागना चाहता है तब ज्ञानो का सुदृढ़ व्यक्तित्व उसका सहारा बनता है । फलतः काली में संघर्षशील प्रवृत्ति अधिक से अधिक जागृत होती है । काली को कबड्डी खेल में हरदेव गहरी चोट पहुँचाता है । ज्ञानो हर तरह का खतरा उठाकर काली का हालचाल पूछने आती है । वहाँ पहली बार उसके शारीरिक संबंध भी बनते हैं । परिणाम स्वरूप वह गर्भवती हो जाती है, उसके गर्भवती होने की स्थिति ही उसकी हत्या का कारण बनती है । भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष के शारीरिक संबंधों में स्त्री को हीन दशा का शिकार होना पड़ता है । सारे मान-अपमान उसीके सिर पर लाद दिये जाते हैं । सामाजिक विधि-निषेध के सामने उसे हार माननी पड़ती है । पर पुरुष को तो किसी स्थिति का सामना करना नहीं पड़ता ।

ज्ञानो और काली सामाजिक परंपराओं के अनुसार जब विवाह बंधन से बंध नहीं सकते तक अपना धर्म परिवर्तन कर ईसाई बनना चाहते हैं । पर ज्ञानो उस समय नाबालिग होने के नाते पादरी भी उनका विवाह करवाने पर राजी नहीं होता । ऐसी स्थिति में काली को और कोई उपाय करना चाहिए था । वह चाहता तो ज्ञानो को लेकर कानपुर भाग सकता था । यह उसके लिए परिचित जगह थी । वहाँ शायद कोई गांववाला उसका पीछा कर नहीं पाता । इस प्रकार मंगू और अन्य विरोधियों से टक्कर देने के लिए काली के द्वारा और कोई रास्ता निकाला जाता तो ज्ञानो की प्राणरक्षा हो जाती । गांव में रहकर ज्ञानो से विवाह असंभव जानते हुए भी काली इस समस्या के हल के लिए कोई ठोस कदम उठा नहीं पता ।

ज्ञानो में साहस है । वह अन्याय का विरोध करती है । पर परिस्थिति के दबाव में वह कुछ नहीं कर पाती । सामाजिक विधि -निषेध तथा अपनी मां -भाई के सामने उसे हार खानी पड़ती है । लाचार वह अपनी लाज बचाने के लिए मां के हाथ से संखिए की गोली खाकर अपना प्राण विसर्जन करती है । वस्तु: यह घटना ज्ञानो के त्याग पूत समर्पित व्यक्तित्व का परिचय प्रदान करती है । लेखक ने ऐसी एक घटना के जरिये सामन्ती मूल्यों वाले समाज में भारतीय नारी के दुखान्त को ही एक बड़े स्तर पर अभिव्यक्ति प्रदान की है । भारतीय समाज में पुरुष और स्त्री का शारीरिक संबंध जब समाज और परिवारवालों से अस्वीकृत होता है तब भयंकर त्रासद स्थिति उत्पन्न होती है । आलोच्य उपन्यास में लेखक जगदीशचन्द्र ने कहा है -“ गांव में हर प्रेम की मारी मुटियार का गर्भवती होने के बाद यही हाल होता था और ऐसी मुटियार की मां की चीखें बहुत ही करुणाभरी होती थीं क्योंकि उनमें बेटी के पाप के साथ-साथ उसके अपने पाप का पछतावा भी शामिल होता था ।”

(धरती धन न अपना, पृ. -283)

वस्तुतः अक्सर ऐसा देखने को मिलता है कि स्त्री -पुरुष के शारीरिक संबंध की कीमत स्त्री को अपने प्राणों की आहुति देकर चुकानी पड़ती है, जो ज्ञानो के क्षेत्र में होता है ।

ज्ञानो अपने इरादों की पक्की लड़की है । उसमें अन्याय का प्रतिरोध करने का दृढ़ मनोबल है । चमारों के बायकाट के समय वह बड़े उत्साह से काम करती है । वह काली का पूरा ध्यान रखती है । उसमें स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा हुआ है । किसी के द्वारा उसकी अवमानना वह सहन नहीं कर पाती । यहाँ तक कि काली द्वारा एक बार उसकी अवमानना किये जाने पर वह उसे फटकार देती है । पुरुष प्रधान समाज में अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए नारी को हमेशा संघर्ष झेलना पड़ता है । ज्ञानो के चरित्र में ऐसा ही देखने को मिलता है । लेकिन इस संघर्ष में उसे अपनी जान ही देनी पड़ती है । वस्तुतः ज्ञानो एक प्रभावशाली आदर्श चरित्र है ।

(ख) गौण -चरित्र

गौण -चरित्र:

आलोच्य उपन्यास में काली और ज्ञानो को छोड़ कर कई गौण चरित्र हैं । इनमें से अधिकांश चरित्र वैयक्तिक न होकर समुदाय या वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में मिलते हैं ।

* चौधरी हरनाम सिंह :

चौधरी हरनाम सिंह चौधरी वर्ग का प्रतिनिधि चरित्र है । वह क्रूर -शोषक, स्वार्थी तथा सामंती विचारों का पोषक है । । उसकी दृष्टि में चमारों का शोषण करना उनसे बेगार लेना, उनपर धौंस जमाना चौधरियों का जन्मसिद्ध अधिकार है । उसमें हमेशा चमारों के प्रति उपेक्षा की भावना भरी रहती है । वह अपने खेत की फसल नष्ट करने के संदेह में जीतू की पिटाई करता है । हालांकि जीतू निर्दोष है । चौधरी हरनाम सिंह की क्रूरता का आतंक चमारों के मुहल्ले पर सदैव बना रहता है । चमारों को वह कुत्तों के बराबर समझता है । चौधरी जूता नीचे फेंक कर सन्तु को पांव से ठोकर मारता हुआ तिरस्कार से बोलता है - “कुत्ते की औलाद हड़बौंग तो ऐसा मचा रहा है जैसे सूली पर चढ़ा दिया हो ।” (धरती धन न अपना, पृ. २०) चौधरी हरनाम सिंह की चाटुकारी और गुलामी करने वाला मंगू चमार भी उसकी निगाह से बच नहीं पाता । हरनाम सिंह उसे भी कुत्ता चमार’ कहकर संबोधित करता है ।

* डॉ. बिशन दास :

डॉ. बिशन दास किताबी कम्युनिष्ट का प्रतीक चरित्र है। उसकी दवाइयों की दुकान है। गांववालों में उसका कम्युनिष्टी प्रभाव है। लोग उसे बहुत बड़ा चाट समझते हैं। उसमें बालेने की बड़ी आदत है। परिणाम स्वरूप उसे कई बार झिड़कियां खानी पड़ती है। वस्तुतः उसके दिल में इन्सानियत के लिए उतना दर्द नहीं जितना उसके दिमाग में किताबी मार्क्सवाद है। वह परिस्थितियों को समझे बिना हवाई क्रांति के सपने देखता है। चमार और चौधरियों के बीच संघर्ष होता है, उस समय वह पड़ोसी गांव के कमांडर टहल सिंह के साथ मिलकर स्तालिन, ट्राट्स्की पर बहस करता है। उधर गांव में संघर्ष के समय रात को काली और कुछ दलितों को बुलाकर मीटिंग कराता है, लंबा-चौड़ा भाषण देता है। चमारों में संघर्ष जारी रखने के लिए वह ठोस कदम न उठाकर हवाई बातें कहता है। उनके लिए अनाज इकट्ठा न करके गांव में जलसे करने की बात करता है। वह सही माने में एक सुविधा भोगी मध्यवर्गीय चरित्र है। वह चमारों की मूल समस्या जाति समस्या को समझे बिना उसे हटाने का प्रयास किये बिना उसे वर्ग संघर्ष का रूप देना चाहता है। फलतः चमारों को इससे फायदे नहीं मिलते। मजबूरन दलित चमार स्थितियों से समझौता करने के अलावा दूसरा कोई रास्ता न देखकर चौधरियों की अधीनता स्वीकार कर लेते हैं।

* छजू शाह :

छजू शाह बनिया संप्रदाय का प्रतिनिधि चरित्र है। गांव में चौधरियों और दलितों दोनों से उसका मधुर संपर्क है। वह इन दोनों को समय पर ब्याज आदि पर रुपये देकर खूब लूटता है। वह अपना उल्लू सीधा करने में सिद्धहस्त है। वह मध्यवर्ग का हिस्सा है, पर निम्न और उच्च दोनों वर्गों से अपना हिस्सा लेता है। वह चौधरियों और दलितों में संघर्ष उत्पन्न करना चाहता है साथ ही जहाँ अपने स्वार्थ में हानि होने की संभावना दिखती है। वहीं दोनों पक्षों में समझौते के लिये प्रयास करता है। वस्तुतः वह रंगा सियार है। उसके सामने पैसा ही सबसे बड़ी सामाजिक शक्ति है। काली जब कानपुर से कुछ कमाई करके गांव लौटता है तो छजू सिंह उसे काली दास संबोधित कर बातें करता है। पर जब खाली होते ही वह फिर वही चमार रह जाता है। छजू सिंह पक्का अवसरवादी है। मीठी-मीठी बातें कर उल्लू सीधा करने में सिद्धहस्त छजू सिंह काली से उसके चाचा के बकाया उधार के नाम पर पच्चीस रुपये दबोच लेता है। अपना उल्लू सीधा हो जाने पर वह किसीका साथ नहीं देता है।

‘धरती धन न अपना’ उपन्यास में उपर्युक्त चरित्रों के अलावा गौण-चरित्र भी पाये जाते हैं। ये जरिर्त्र धार्मिक पाखंड और दंभ के चरित्र हैं। वे आत्मा - परमात्मा और मानव प्रेम को लेकर पाखंड

भरी बातें करते हैं। इन चरित्रों में आत्मीयता और मानववादी दृष्टिकोण की कमी है। दलित चमारों की मुसीबतों के समय इन्हें किसी भी प्रकार की सहायता नहीं करते, बल्कि फायदा उठाने का प्रयास करते हैं। बाढ़ के समय चमादड़ी के कुँए डूब जाते हैं। तब पंडित संतराम चमारों को मंदिर के कुँए से पानी भरने नहीं देता। उधर पादरी अचिंतराम भी बाढ़ पीड़ित दलित चमारों को नल से जल खींचने नहीं देता। जहाँ पंडित संतराम में दलित चमारों के प्रति छुआछुत की भावना भरी रहती है वहीं उनकी स्त्रियों को देखने पर उसकी लार टपकती है। पादरी दलितों चमारों की आर्थिक दुर्गीति का फायदा उठाकर उनका धर्म परिवर्तन करवाना चाहता है। अशिक्षित चमार उनके बहकावे में आकर ईसाई धर्म अपना लेते हैं। बायकाट के समय भूखे चमार सहायता के लिए पादरी के पास जाते हैं। पर पादरी पहले उनके सामने धर्मान्तरण की बात रखकर सहायता करना चाहता है। लेखक ने धार्मिक आड़ में ऐसे चरित्रों की असलियत का पर्दापाश किया है। आज भी समाज में ऐसे चरित्रों की कमी नहीं है। आलोच्य उपन्यास में सवर्णों में लालू पहलवान के चरित्र को लेखक ने मानवीय विचारों के प्रतीक के रूप में उपस्थापित किया है। इस चरित्र में चौधरियों की तरह अन्याय -अत्याचार छल-कपट नहीं मिलता है। वह अपने मजदूरों के साथ मानवीय व्यवहार करता है। उनकी परेशानियों का लाभ नहीं उठाकर उनको साथ देता है। तकलीफ के समय उनके घर पहुँचता है। कबड्डी के खेल में काली के पैर टूट जाते समय वह काली का इलाज करवाता है। इतना होते हुए भी चौधरी और दलितों के बीच संघर्ष के समय वह अपने वर्ग का सात देता है। लेखक ने उसके चरित्र की विविध पहलुओं पर बड़ी सुन्दरता से प्रकाश डाला है।

(ग) अन्य दलित चरित्र

अन्य दलित चरित्र :

इन चरित्रों के अलावा इस उपन्यास में और कुछ दलित चरित्र हैं। जिनका उपन्यास की कथावस्तु से शुरू से अंत तक संबंध देखने को मिलता है। लेखक ने इन चरित्रों के सबल और दुर्बल पक्षों का बड़ा सफल रेखांकन किया है। इन चरित्रों में मंगू, नंद सिंह, काली की चाची प्रतापी, पड़ोसी निक्को -प्रीतो आदि आते हैं। ज्ञानो का भाई मंगू इस उपन्यास में शुरू से अंत तक खल(दुष्ट चरित्र) की भूमिका अदा करता है। काली जब चमादड़ी में पक्का मकान बनाने की प्रस्तुति करता है तब मंगू चिढ़ने के साथ-साथ पड़ोसी निक्को को काली से लड़वा देता है। मंगू चौधरी हरनाम सिंह का चाटुकार और गुलाम है। वह अपने जाति भाइयों के खिलाफ आवाज उठाकर चौधरी हरनाम सिंह की सहायता करता

है । पर हरनाम सिंह मंगू को अक्सर कुत्ता चमार कहकर गालियां देता है । वह अपने जातिभाइयों का दुश्मन बन काम करता है । यहाँ तक कि अपनी बहन ज्ञानो को गाली -गलौज करता है, मारता -पीटता है । काली और ज्ञानो में गहरा प्रेम संबंध विवाह में परिणत नहीं हो पाता । इस बीच ज्ञानो गर्भवती बन जाती है । मंगू बहन ज्ञानो को संख्या देकर मार डालता है । लेखक ने इस चरित्र में पूरी अमानवीयता का प्रदर्शन किया है ।

उपन्यास में और एक दलित चरित्र है नंद सिंह । वह पुश्तैनी धंधा जूते बाने -संवारने का काम करता है । नंदसिंह आत्म सचेतन व्यक्ति है । वह अपनी रोजी रोटी के लिए चौधरियों पर निर्भर नहीं करता । फिर भी चौधरी उसे चमार, कुत्ता, कहकर अपमानित करते हैं । ऐसी अपमानजनक स्थिति से बचने के लिए वह सिख धर्म की जाति -पांति से ऊपर समझकर सिख बन जाता है । पर इससे उसे मुक्ति नहीं मिलती । बाद में वह ईसाई बन जाता है । ईसाई होने के बाद भी चौधरी इन्सान के रूप में उसकी इज्जत नहीं करता । वह वही 'कुत्ता चमार' ही रहता है । वस्तुतः सिर्फ धर्म-परिवर्तन से हमारे देश में निम्न जातियों की मुक्ति संभव नहीं । परन्तु आर्थिक -सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तन से ही उनका जीवन बदल सकता है । इसीसे वह इन्सान के रूप में जीवित रह सकता है । लेखक ने ऐसे चरित्रों के जरिये सामन्ती व्यवस्था और जाति -पांति से पीड़ित जनता की दुर्गति का चित्रण कर समाज में सचेतनता उत्पन्न करने का सफल प्रयास किया है ।

उपन्यास में काली की चाची प्रतरपी एक स्नेहमयी नारी पात्र है । काली उसका भतीजा है । उसकी अपनी कोई संतान न होने के कारण काली ही उसके लिए सब कुछ है । वह काली से बेहद प्यार करती है । काली घर बार छोड़ कानपुर भाग जाता है । छः साल बाद जब चमादड़ी लौटता है तो चाची खुशी से फूली नहीं समाती है । वह खुशी के मारे सबके घर जाकर शक्कर बांटती है । चाची प्रतापी जीवन भर गरीबी में छटपटाती है । काली के आ जाने पर उसे थोड़ा बहुत आनन्द मिलता है । काली जब चमादड़ी में पक्का कोठा बनाने की घोषणा करता है तो चाची का मन खुशी से झूम उठता है । पर अचानक वह बीमारी का शिकार होती है और उसके प्राण पखेरु उड़ जाते हैं ।

काली के पड़ोसी हैं निक्कू और प्रीतो । दस-ग्यारह बच्चों का बाप निक्कू एक कामचोर , निठल्ला आदमी है । पत्नी प्रीतो कड़ी मेहनत से घर चलती है बेटी लच्छो भी कच्ची उम्र में चौधरियों के यहाँ काम करके परिवारवालों को खिलाती है । पर इस मासूम लड़की को चौधरी हरदेव सिंह के हाथों यौन शोषण का शिकार बनना पड़ता है । मां प्रीति भी जीवन भर यौन शोषण का शिकार बनी रहती है । गरीबी और चेतना के विकास के अभाव में मां-बेटी दोनों चुपचाप इसे अपनी नियति समझकर सह लेती है । सवर्ण चौधरियों का इस अमानवीय अत्याचार और शोषण के शिकार बनी दलित युवतियों की स्थिति कही नहीं जा सकती । दलित चमारों में बाबा फत्तो और ताया बसंता जैसे कई बुजुर्ग हैं । दलितों

की समस्याओं के समाधान के लिए वे दोनों नेतृत्व लेते हैं । चमार और चौधरी के बीच का संघर्ष उन्हीं के प्रयास से हल होता है । इस प्रकार 'धरती धन न अपना' उपन्यास में ऐसे कई दलित पात्र दिखाई देते हैं जिनकी उपन्यास में कुछ न कुछ भूमिका देखने को मिलती है ।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में जगदीशचन्द्र ने धरती को प्रतीक बना कर दलित जीवन की करुण गाथा कही है । काली को न धरती मिली, न प्रेम और न करुणा - सहानुभूति । दलित जीवन की इससे बड़ी विडंबना क्या हो सकती है ! ऐसा लगता है पूरा परिवेश ही धनके विपक्ष में है । काली पलायनवादी नहीं है । अंत तक संघर्ष करता है । गांव छोड़ना उसकी आशा की अंतिम किरण मिटने के बाद संभावनाएँ समाप्त होना दिखाता है । जगदीशचन्द्र ने यथार्थ के रूप में सारे कथानक में पात्रों का आवागमन दिखाया है ।

2.7 भाषा -शैली :

यह उपन्यास हिंदी के महत्वपूर्ण उपन्यासों में गिना जाता है । इसका परिवेश लखनऊ और पंजाब का देहात दोनों है । कथाकार ने दोनों का बाखूबी प्रयोग किया है । चरित्र, लगभग सभी दलित वर्ग एवं ग्रामीण माहौल से है । अतः उन्होंने भाषा के स्तर पर लोक भाषा का प्रयोग खुल कर किया है । जब सवर्ण या अन्य वर्णनात्मक प्रसंग आते हैं तब खड़ी बोली का सहारा लेते हैं । इस प्रकार पात्रानुकूल एवं प्रसंगोचित भाषा प्रयोग में जगदीशचन्द्र कभी नहीं चूके । इसी संदर्भ में गाली-गलौज या भदे शब्दों, प्रसंगों को भी देखा जा सकता है । जातिगत उद्गार, विद्वेष और आक्रोश व्यक्त करने हेतु उपयुक्त भाषा शब्द, शैली का प्रयोग हुआ है । इस प्रकार भाषा का सही चुनाव जगदीशचन्द्र की अन्यतम विशेषता है जो आगे आये दो उपन्यासों में भी उपलब्ध होती है ।

2.8 शीर्षक :

उपन्यास का शीर्षक महत्वपूर्ण है । समस्या धरती को ले कर है । आजादी के बाद भूमि सुधार की अनेक योजनाएँ बनी हैं । परंतु जमींदारों ने तोड़-मोड़ कर निरस्त कर दिया । बहुत कम लाभ इन दलितों को मिला । यहाँ तक कि अपनी 'डीह' भी अपनी नहीं रह पाती । सारा कथानक इस जमीन के इर्द-गिर्द घूमता है । भारतीय जमीन डीह(रहने की) या खेत की हो - उसे समान प्यार है । परंतु दलित को दोनों ही नहीं मिल पाते । चौधरी 'सामताल' का नाम लेकर दलितों के अधिकार सीमित कर देते हैं । इसका कहीं कोई रिकार्ड नहीं । बस कह देने भर से सीमित अधिकारों से रहता है । खेतों पर तो

पुश्तैनी अधिकार सवर्णों का रहता आया है । अतः इस उपन्यास में वह प्रसंग विशेष चर्चित नहीं हुआ । परंतु धरती जमीन को लेकर खूब चर्चा हुई । कभी -कभी तो काली का संघर्ष जाति प्रथा से बढ़ कर जमीन के अधिकार का आ जाता है । लेखक ने इसी को आधार बना कर सारी लड़ाई लड़ी । साक्षी - प्रमाण कुछ नहीं है । अतः यह लड़ाई कोर्ट -कचहरी न जाकर आपस में ही अन्य मुद्दों को लेकर चलती है । काली को इसमें सफलता नहीं मिलती यहाँ तक कि प्रेमिका से भी हाथ धोना पड़ा । तब वह हथियार डाल पीछे हटता है । इस प्रकार यथार्थ दृष्टि वाले इस उपन्यास ने कथा असमाप्त छोड़ी- क्योंकि समस्या अभी समाप्त नहीं होती । आगे संघर्ष दूसरी पीढ़ी लड़ेगी । जारी है । इस प्रकार पीड़ा भरी कथा में जगदीशचन्द्र ने कोई तर्क संगत (लाजिकल) अंत देने की जगह इसे विलंबित रूप में समाप्त किया । इस प्रकार हिंदी की यह महत्वपूर्ण कृति बन जाती है । यह शीर्षक सार्थकता प्रमाणित करता है ।

UNIT - III

‘जूठन’

UNIT - III

- 3.1.1 ओमप्रकाश बाल्मीकि जी का परिचय
- 3.1.2 दलित जीवन का दस्तावेज
- 3.1.3 कथानक
- 3.1.4 दलित समाज और उसके सुधार में ओमप्रकाश की भूमिका
- 3.1.5 नामकरण
- 3.1.6 भाषा
- 3.1.7 आत्मकथा के रूप में मूल्यांकन

‘तिरस्कृत’

- 3.2.1 सूरजपाल चौहान जी का परिचय
- 3.2.2 तिरस्कृत : एक नजर
- 3.2.3 दलित आत्मकथाएँ और तिरस्कृत

UNIT - III

आत्मकथा - 'जूठन'

3.1.1 ओमप्रकाश बाल्मीकि : एक संक्षिप्त परिचय :

सामाजिक सड़ांध को उजागर करने वाले दलित साहित्यकार ओमप्रकाश बाल्मीकि का जन्म 30 जून 1950 को उत्तर प्रदेश के बरला जिले के अन्तर्गत मुजफ्फरनगर में एक चूहड़े परिवार में हुआ था। तत्कालीन समाज में सवर्णों के अन्याय-अत्याचार शोषण पोषण से चूहड़े जैसे असवर्णों का जीना दुभर था। अस्पृश्यता का ऐसा माहौल था कि कुत्ते, बिल्ली, गाय-भैंस का छूना बुरा नहीं था लेकिन चूहड़ों का स्पर्श होते ही पाप लग जाता था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म। 'इस्तेमाल करो दूर फेंको' सवर्णों की यह नीति थी। समाज में नीच जाति के लिए शिक्षा पर कोई अधिकार नहीं था। जानबूझ कर उन्हें शिक्षा से वंचित किया जाता था। ओमप्रकाश के पिता छोटनलाल निरक्षर थे। गरीबी से पूरा परिवार छटपटा रहा था। फिर भी बेटे को पढ़ा लिखा कर समाज में प्रतिष्ठित करना पिताजी का लक्ष्य था। गांव के किनारे गन्दगी से भरी भंगी बस्ती में ओमप्रकाश का बचपन बीता था। ऐसी हालत में वे एक विद्रोही चरित्र बनकर सारी प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझते हुए पढ़ाई शुरू कर निरन्तर संघर्ष के परिणाम स्वरूप स्नातकोत्तर(हिंदी) तक पहुँचे। तत्कालीन समाज चाहता था कि उनके हाथ पर झाड़ू रहे पर कठोर तपस्या ने उन्हें कलम पकड़ा दी।

ओमप्रकाश की प्राथमिक शिक्षा गांव में ही हुई। बाद में उन्होंने जबलपुर तथा बंबई से तकनीकी शिक्षा ग्रहण की। भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय के उत्पादन विभाग में उन्हें नियुक्ति मिली। वहीं पर विभिन्न भागों में काम करते हुए हिंदी में एम.ए. और साहित्य रत्न की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1955 में उन्होंने दलितों के उद्धार के लिए साहित्य सृजन का काम शुरू किया। एक लंबी अवधि तक साहित्य की विविध विधाओं में कलम चलाकर 17 नवम्बर 2013 को संसार छोड़ चल बसे।

ओमप्रकाश की कई महत्वपूर्ण कृतियाँ इस प्रकार हैं - सदियों का सलाम, घुसपैठिए (कथा संग्रह), दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, मुख्या धारा और दलित साहित्य, सफाई देवता, (सामाजिक अध्ययन), दलित साहित्य : अनुभव, संघर्ष और यथार्थ आदि। इसके अतिरिक्त इनकी कविताएँ - 'दर्द के दस्तावेज', 'उत्तर हिमानी', 'दलित चेतना' कविता तथा कहानियाँ - 'कथा परिदृश्य' और

‘काले हाशिए पर’ आदि संग्रहों में संकलित की गई हैं। साथ ही इन्होंने लगभग साठ नाटकों में अभिनय भी किया है।

समाज सेवा और साहित्य सृजन के लिए ओमप्रकाश को कई पुरस्कार और सम्मानों से नवाजा गया है। डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार 1993, परिदेश सम्मान 1995, जयश्री सम्मान 1996, कथाक्रम सम्मान 2001, न्यू इंडिया बुक पुरस्कार 2004, साहित्य भूषण सम्मान, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, प्रदत्त कई सम्मानों से विभूषित हैं।

ओमप्रकाश का जूझारु व्यक्तित्व उनकी अपनी पहचान है। बचपन में ही उनके मन में जाति भेद को लेकर असंतोष की आग जली थी जो अंत तक जलती रही। इस असंतोष की आग ने उनके मन में विद्रोह भावना जगायी थी। इस भावना ने ही सामाजिक परिवर्तन की ओर प्रेरित किया। लोहा आग में तपने से ही फौलाद बनता है। ठीक उसी प्रकार आर्थिक, सामाजिक और मानसिक यातनाओं के साथ जूझते हुए उन्होंने अपने व्यक्तित्व को ऊँचा बनाया है। सादा जीवन ऊँच विचार उनका धर्म रहा है। बड़ी निर्भयता से उन्होंने तत्कालीन समाज का सामना किया है। कवि परिश्रम और सफलता पाने के लिए अक्कड़पन ने ही उन्हें मानवता का महामंत्र सिखाया। एक समाज सुधारक के रूप में उन्होंने अपने आपको प्रतिष्ठित किया। वे जहाँ एक ओर सामाजिक विसंगतियों के खिलाफ आवाज बुलन्द करने लगे वहीं दूसरी ओर नीलकंठ की तरह सारी प्रताड़नाओं को जहर सदृश सहते रहे। स्वयं लेखक का कहना है - “दलित जीवन की पीड़ाएँ असहनीय और अनुभवजन्य हैं। ऐसे अनुभव जो साहित्यिक अभिव्यक्तियों में स्थान नहीं पा सके। एक ऐसी समाज व्यवस्था में हमने सांस ली है, जो बेहद क्रूर और अमानवीय है। दलितों के प्रति असंवेदनशील भी ...”।

भारतीय समाज में ‘जाति’ एक महत्वपूर्ण घटक है। व्यक्ति पैदा होते ही जाति व्यक्ति की नियति तय कर देती है। इस सच्चाई की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लेखक ने कहा है - “बचपन से लेकर आज तक न जाने कितने दंश जिस्म पर ही नहीं, मन पर भी चुभे हैं। इस घृणा-द्वेष के पीछे कौन से ऐतिहासिक कारण हैं, जब -जब भी व्यवस्था को आदर्श मानने वालों और हिन्दुत्व पर गर्व करनेवालों से पूछा तो सीधा उत्तर देने के बजाय बात को अक्सर टाल जाते हैं -या नाराज हो जाते हैं। ज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें कहेंगे। लेकिन इस सच्चाई को स्वीकार नहीं करेंगे कि आदमी को जन्म के आधार पर मानवीय मूल्यों से वंचित रखना किसी भी तरह न्याय संगत नहीं है। सवर्णों के मन में कई प्रकार के पूर्वाग्रह हैं जो आपसी संबंधों को महान नहीं होने देते हैं।” इससे लेखक के जीवनानुभव और दलितों के उद्धार के लिए समर्पित भावना का परिचय मिलता है। वास्तव में अम्बेडकर के चिंतन और आदर्श को आगे बढ़ानेवाले, दलितों को प्रेरणा प्रदान करने वाले ओमप्रकाश बाल्मीकि अपनी सेवा

और सारस्वत साधना के लिए हमेशा अजर अमर रहेंगे । ओमप्रकाश अपनी कविताओं के लिए भी प्रसिद्ध थे । 'सदियों का संताप' और 'बस्स' दो प्रसिद्ध कविता संगलन हैं । यहाँ दलित आक्रोश को काव्य रूप में व्यक्त किया गया है । अतः इन कविताओं पर वैचारिक दृष्टि का प्रभाव मिलता है ।

3.1.2 दलित जीवन का दस्तावेज : जूठन :

डॉ. अम्बेडकर दलितों के त्राणकर्ता माने जाते हैं । मराठी में लिखित उनकी आत्मकथा 'मी कसा झाले' (मैं कैसे बना) से सबसे पहले दलित साहित्यकारों को आत्मकथा लिखने की प्रेरणा मिली थी । इस संबंध में डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन ने लिखा है - " वस्तुतः यह डॉ.अम्बेडकर थे, जिनकी प्रेरणा और प्रभाव से ही आत्मकथा लेखन प्रारंभ हुआ, उन्होंने स्वयं अंतरंग बातें प्रो. सत्यबोध हुदलीकर की डायरी में दर्ज कराई थीं । तत्कालीन मराठी साहित्य की स्थापित पत्रिका 'नवयुग' के अम्बेडकर विशेषांक (15 अप्रैल 1947) में इसे प्रकाशित किया गया था । पत्रिका में उनकी आत्मकथा का एक अंश प्रकाशित हुआ था । उसके बाद डॉ. अम्बेडकर ने 'मैं कैसे बना?' शीर्षक से आत्मकथा लिखना प्रारंभ किया था " (वंचितों के वृत्तान्त) (लेख), जनसत्ता दैनिक, दिल्ली, (25 नवम्बर 2001) । डॉ. अम्बेडकर की आत्मकथा के प्रकाशन के बाद मराठी दलित साहित्यकारों में से अनेकों ने आत्मकथा लिखना शुरू कर दिया । थोड़े ही दिनों में मराठी में दलित साहित्यकारों की कई आत्मकथाएँ प्रकाशित होने लगी । इतना ही नहीं इनका हिन्दी भाषान्तर होकर प्रकाशित हुआ । हिंदी दलित साहित्यकारों ने इनसे प्रेरित होकर अपनी-अपनी आत्मकथा लिखना प्रारंभ किया । परिणाम स्वरूप मोहनदास नैमिशराय का 'अपने-अपने पिंजरे' ओमप्रकाश बाल्मीकि की 'जूठन' और सूरजपाल चौहान का 'तिरस्कृत' वैसी आत्मकथाओं के अलावा अन्य कई आत्मकथाएँ प्रकाशित हुईं । ये आत्मकथाएँ दलित जीवन तथा समाज के कटु यथार्थ की सशक्त प्रस्तुतियाँ हैं । इन आत्मकथाओं में 'जूठन' की सबसे अधिक लोकप्रियता देखने को मिलती है । वस्तुतः यह एक बहुचर्चित आत्मकथा है ।

जूठन :

'जूठन' सामाजिक सडांध को उजागर करने वाले दलित लेखक ओमप्रकाश बाल्मीकि की आत्मकथा है । हिन्दी दलित साहित्य में मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' के प्रकाशन के बाद 'जूठन' का परिप्रकाश हुआ । 'जूठन' के प्रकाशन ने एक नया मोड़ लिया । दलितों के आत्मकथा लेखन की परंपरा को लेकर विवाद खड़ा हुआ । इस विवाद में गैर दलित साहित्यकारों के साथ कुछ आत्मकथाकार भी शामिल दिखाई पड़े । जहाँ एक ओर दलितों की आत्मकथा को मराठी की

नकल माना गया वहीं दूसरी ओर कुछ आत्मकथाकारों ने ऐसी आत्मकथा लेखन से अपनी जाति की बेइज्जती हो रही है, समझा। इस प्रकार दलितों की आत्मकथा विरोध के सिलसिले में रही।

ओमप्रकाश जन्म से लेकर अंत तक दलित जीवन की त्रासदी के साथ अनवरत संघर्ष करते रहे। वे पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और वैयक्तिक समस्याओं से जूझते हुए अंत तक जाति के कटघरे से मुक्त नहीं हो सके। अपनी प्राथमिक शिक्षा से लेकर नौकरी जीवन तक केवल संघर्ष ही करते रहे। तत्कालीन भारतीय समाज सामाजिक व्यवस्था, सवर्णों की मानसिकता, दलितों पर अन्याय - अत्याचार और शोषण, गांव और शहरी परिवेश तथा वहाँ के लोगों की संकीर्ण मनोवृत्ति, रुढ़ि, अंधविश्वास और कुसंस्कार जैसे असामाजिक तत्वों से जुड़े जीवनभर की अनुभूति और मानसिक यंत्रणा ने ओमप्रकाश जी को अपनी आत्मकथा लिखने को प्रेरित किया। स्वयं ओमप्रकाश ने 'जूठन' में 'लेखक की ओर से' शीर्षक में इस संबंध में अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए लिखा है - 'इन अनुभवों को लिखने में कई प्रकार के खतरे थे। एक लंबी जद्दोजहद के बाद, मैंने सिलसिलेवार लिखना शुरू किया। तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं, प्रताड़नाओं को एक बार फिर जीना पड़ा। उस दौरान गहरी मानसिक यंत्रणाएँ मैंने भोगी। स्वयं को परत - दर - परत उधेड़ते हुए कई बार लगा - कितना दुखदाई है यह सब। कुछ लोगों को यह अविश्वासनीय और अतिरंजना पूर्ण लगता है।'

सच तो यह है कि हम कितने ही प्रगतिशील क्यों न बन जाय मगर हम दलितों और पिछड़ों को मनुष्य नहीं मानते। उन्हें उनके अधिकारों से वंचित करते हैं किन्तु उनका जीना दूभर करने में लगे रहते हैं। समाज में दलितों के प्रति ऐसी उपेक्षा क्यों? ओमप्रकाश की आत्मकथा 'जूठन' इस प्रश्न का जवाब ढूँढता है। वस्तुतः एक दलित लेखक के जीवन भर की व्यथा-कथा का दस्तावेज है 'जूठन'। अतः शिक्षा-दीक्षा से समुन्नत आधुनिक सभ्य समाज में ऐसे अवहेलित दलित जीवन की त्रासद कहानी का अध्ययन और अध्यापन निहायत जरूरी है।

'जूठन' में लेखक का पारिवारिक जीवन, परिवेश, पढ़ाई की समस्या, गांव में भंगी-चमार जैसे दलितों की त्रासद सामाजिक, आर्थिक स्थिति, सवर्णों से उनका शोषण, अन्याय - अत्याचार, दलितों में सदियों से रहे अंध-विश्वास, आस्था की कमी, आत्मसंचेतनता की कमी, आपसी फूट, तथा स्वस्थ समाज निर्माण में लेखक के सुधारवादी दृष्टिकोण जैसे कई विषयों की उपस्थापना की गई है।

3.1.3 कथानक :

जोहड़ी के किनारे पर चूहड़ों के मकान थे। चारों तरफ गंदगी भरी थी। तंग गलियों में घूमते सूअर, नंग-धड़ंग बच्चे, कुत्ते लोगों के झगड़े ऐसे ही वातावरण में ओमप्रकाशजी का बचपन बीता था।

परिवार में पांच भाई, एक बहन, दो चाचा और एक ताऊ सब के सब कुछ न कुछ काम करते थे - फिर भी दो वक्त की रोटी नहीं मिल पाती थी । तगाओं के घरों में साफ -सफाई से लेकर खेती बाड़ी, मेहनत -मजदूरी सभी काम होते थे । रात-बेरात बेगार भी करनी पड़ती थी । इसके बदले मजदूरी नहीं मिलती थी । बेगार के लिए मना करने की हिम्मत किसी में नहीं थी । परिवार में सबकी गाली -गलौज और प्रताड़ना सहने की आदत पड़ चुकी थी । परिवारवालों के प्रति सवर्णों का उम्र में बड़ा हो तो 'ओ चूहड़े' बराबर या उम्र में छोटा हो तो 'अबे चूहड़े' यही संबोधन था । अस्पृश्यता का माहौल था । चूहड़े के स्पर्श से पाप लग जाता था । समाज में इन्सानियत का कोई नामो निशान तक नहीं था । चूहड़े केवल काम की वस्तु थे । किसी के काम पूरा हो जाने के बाद काम संपादन करने वाले चूहड़े के प्रति सवर्णों के मन में कृतज्ञता के बदले अनादर की भावना भरी रहती थी । इस प्रकार लेखक के अनुसार इस कुल में जन्म लेने वाला व्यक्ति अपने आप को अभिशप्त जैसा मानता था ।

चूहड़े परिवारों के बच्चे पढ़ाई-लिखाई नहीं करते थे । उन्हें स्कूल में जाकर पढ़ने की अनुमति नहीं थी । आजादी के बाद भी जन सामान्य की मानसिकता में विशेष बदलाव नहीं आया था । सवर्णों के साथ चूहड़ों को पढ़ने का अधिकार नहीं था । कोई अगर स्कूल जाता तो उसे दूसरों से दूर जमीन पर बैठना पड़ता था । सवर्णों के बच्चे जाति का नाम लेकर दलित बच्चों को चिढ़ाते थे और कोई बिना कारण पीटते थे । स्कूल में दलित बच्चों का पानी पीना भी मना था । सवर्ण बच्चों की तरह उन्हें हैंडपंप छूने नहीं दिया जाता था । हैंडपंप छूने से सजा मिलती थी । स्कूल शिक्षक इन बच्चों को खूब पीटते थे । इन्हें भद्दी गालियाँ देते थे । जहाँ सवर्ण बच्चों को प्यार मिलता था वहीं चूहड़ों के बच्चों को बिना अपराध मां-बहन लेकर गालियाँ सुनना पड़ता था । शिक्षक लोग इन बच्चों के हाथ में झाड़ू पकड़ा कर स्कूल के मैदान की साफ-सफाई कराते थे । ऐसे में दलित बच्चों के मुँह में हमेशा मुस्कान के बदले उदासी छाई रहती थी । स्कूल की परेशानियाँ झेलनेवाले ओमप्रकाश ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि स्कूल में दाखिला लेने के बाद एक बार मास्टर कालीराम उनसे पूछता है - "क्या नाम है बे तेरा ?" ओम प्रकाश ने धीमी आवाज में अपना नाम बताया । हेड मास्टर को देखते ही बच्चे सहम जाते थे । पूरे स्कूल में उनकी दहशत थी । 'चूहड़ों का है ?' हेडमास्टर का दूसरा सवाल उछला । 'जी', ठीक है... । वह जो शीशम का पेड़ है, उस पर चढ़ जा और टहनियाँ तोड़ के झाड़ू बना ले । पत्तों वाली झाड़ू बनाना और पूरे स्कूल को ऐसा चमका दे जैसा सीसा । तेरा तो यह खानदानी काम है । जा... फटाफट लग जा काम पे ।" लेखक को पूरा दिन झाड़ू लगाने का आदेश मिला । दो दिन झाड़ू लगाने के बाद तीसरे दिन जब ओमप्रकाश चुपचाप बैठ गये तब हेडमास्टर की दहाड़ दुनाई पड़ी - "अबे, ओ चूहड़े के, मादर... कहाँ घुस गयाअपनी मां ... ।' उनकी दहाड़ सुनकर लेखक थर-थर कांपने लगे । उस वक्त एक त्यागी लड़के ने चिल्लाकर कहा -

“मास्साब, वो बैठा है कोने में ।” हेडमास्टर ने लेखक की गर्दन दबोच ली । कक्षा से बाहर खींचकर लेखक को बरामदे में ला पटका । फिर चीखकर बोले, जा लगा पूरे मैदान में झाड़ू ...नहीं तो गांड में मिर्ची डालके स्कूल से बाहर काढ़(निकाल) दूंगा ।” (जूठन- पृष्ठ -15) । इतना ही नहीं ओमप्रकाश के पिता ने जब यह बात गांववालों से कहा तो उत्तर मिला-“ क्या करेगा स्कूल भेज कर” या कौने हासिल ना होती ।” या फिर झाड़ू ही तो लगवाई है, विद्या ऐसे तरियों गुरु -दक्षिणा में अंगूठा तो नहीं मांगा ।”(जूठन -पृ. -17) इस प्रकार स्कूल में दलित बच्चों के प्रति हमेशा अनादर की भावना बनी रहती थी । वहाँ दलित की रीति-रिवाज, खान-पान, चाल-चलन की आलोचना करते हुए उन पर कीचड़ फेंकी जाती थी । स्कूली परिवेश जाति-पांति, छूत-अछूत के भेद-भाव से ऐसा कलुषित था कि चूहड़े, चमार जैसे दलित बच्चों के लिए वहाँ चैन की सांस लेना मुश्किल था । चूहड़ों के बच्चों के प्रति केवल स्कूल में नहीं गांव के विविध वर्ग या जातियों के लोगों में भी ऐसी घृणा की भावना बनी रहती थी । ओमप्रकाश ने अपनी आत्मकथा में इस बात को स्पष्ट करने के लिए अपने कपड़े की इस्तरी करते वक्त घटी एक घटना का उल्लेख किया है -“खादी वर्दी को मैंने रगड़-रगड़ कर धोया था । समस्या थी इस्तरी करने की । मेरी कक्षा में धोबी का एक लड़का था । मैंने उनसे कहा । उसने शाम को घर आने के लिए कहा । शाम को बर्दी लेकर उसके घर गया । मुझे देखते ही उसका बाप चिल्लाया-“ अबे ! चूहड़े के किपे घुसा आ रहा है ?” उसका बेटा उसके पास खड़ा था । मैंने कहा -“ वर्दी पर इस्तरी करानी है ।” हम चूहड़े चमारों के कपड़े न धुलवाएँगे, न ही इस्तरी करते हैं । जो तेरे कपड़े पर इस्तरी कर देंगे, तो तगा कपड़े न धुलवायेंगे, म्हारी तो रोजी रोटी चली जा गी ...” (जूठन -पृ. - 28)

‘जूठन’ में चूहड़ों की जीवन शैली का मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है । लेखक ने अपने परिवार वालों तथा अन्य चूहड़ों के दर्दनाक जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है । चूहड़े कठिन परिश्रमी हैं । पर कड़ी मेहनत के बावजूद इन्हें दो जून रोटी नहीं मिलती । फसल कटाई के समय सवर्ण लोग गाली-गलौज के साथ बलपूर्वक दलित चमार चूहड़ों को काम के लिए ले जाते हैं । काम पूरा होने के बाद इन्हें सही पारिश्रम दिये बिना कंजूसी करते हैं । परिवार में पुरुष बाहर के काम करते हैं, जब कि नारियाँ मेहनत मजदूरियों के साथ घर की लिपाई-पुताई आदि करते हैं । सवर्णों के घर में गृहपालित पशु-पक्षियों की देखभाल करना, गाय-गोरू, मवेशियों का गोबर उठाकर उपले बनाना आदि रोजमर्रे का काम था । दो पहर को प्रत्येक घर से एक बची खुची रोटी जो खास तौर पर चूहड़ों को देने के लिए आटे में भूसी मिलाकर बनायी जाती थी इसे पाकर उन्हें संतोष से रहना पड़ता था । कभी -कभी भंगन की टोकरी में जूठन भी डाल दी जाती थी । शादी-ब्याह के मौकों पर जब मेहमान या बराती खाना खा रहे होते थे तो चूहड़े दरवाजों के बाहर बड़े-बड़े टोकरे लेकर बैठ रहते थे । बरात खाना खा चुकने के बाद जूठी पत्तलें उन टोकरों में डाल दी जाती थीं जिन्हें चूहड़े घर ले जाकर जूठन इकट्ठी कर लेते थे ।

पूरी के बचे-खुचे टुकड़े एक मिठाई का टुकड़ा या थोड़ी बहुत सब्जी पत्तल पर पाकर बाछें खिल जाती थीं । जूठन चटखारे लेकर खाई जाती थी । अक्सर ऐसे मौकों पर बड़े-बूढ़े ऐसी बरातों का जिक्र बहुत ही रोमांचक लहजे में सुनाया करते थे कि उस बरात से इतनी जूठन आई थी कि महीनों तक खाते रहे थे । जूठन को धूप में सूखा कर आगे के लिए सुरक्षित रखा जाता था । लेखक ने जूठन समेटने की तत्कालीन परंपरा के आधार पर अपनी आत्मकथा का नाम 'जूठन' रखा है । इस संबंध में ओमप्रकाश ने एक घटना का उल्लेख किया है - "सुखदेव सिंह के घर में बरात खाना खा रही थी । मां टोकरा लिए दरवाजे के बाहर बैठी थी । मैं और मेरी छोटी बहन माया मां से सिमटे बैठे थे । इस उम्मीद में कि भीतर से मिठाई और पकवानों की महक आ रही है, वह हमें भी खाने को मिलेगी । जब सब खाना खाकर चले गये, तो मेरी मांने सुखदेव सिंह त्यागी को दालान से बाहर आते देखकर कहा - "चौधरीजी, इब तो सब खाना खाके चले गये ... म्हारे जाकतों(बच्चों) कूं भी एक पत्तल पर घर के कुछ दे दो । वो बी तो इस दिन का इन्तजार करते ।"(जूठन -पृ. 21)

सुखदेव सिंह ने जूठी पत्तलों से भरे टोकरे की तरफ इशारा करके कहा - "टोकरा भर तो जूठन ले जा री है ... ऊपर से जाकतों के लिए खाणा मांग री है ? अपणी औकात में रह चूहड़ी ! ऊठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन ।"(जूठन -पृ. - 21) उस दिन सुखदेव की ऐसी बातों में ओमप्रकाश की मांने दुर्गा का भयंकर रूप धारण किया था । उसने टोकरा वहीं बिखेर दिया था और सुखदेवसिंह से कहा था- "इसे ठाके अपने घर में रख ले । कल तड़के बारातियों को खिला देणा ... । सुखदेव मां पर हाथ उठाने के लिए झपटा था, लेकिन लेखक की मांने शेरनी की तरह डरे बिना सामना किया था । जूठन का सिलसिला उस घटना के बाद बंद हो गया था । हिन्दू धर्म के नियन्ताओं के द्वारा अंध विश्वास और रूढ़िवादिता के प्रचार-प्रसार से दलित समाज आन्तरिक विसंगतियों का भी शिकर हुआ था । बाल्मीकि समाज में ऐसी अनेक बुराइयाँ थीं । शादी -ब्याह के अवसर पर अत्यंत निन्दनीय सलाम की प्रथा प्रचलित थी । लेखक के अनुसार - "देखने -सुनने में बहुत साधारण सी बात लग सकती है, लेकिन दूल्हा हो या दुल्हन शादी के पहले ही दिन उसमें हीनता बोध भर दिया जाता है ... सदियों से चली आ रही इस प्रथा के पार्श्व में जातीय अहं की पराकाष्ठा है । समाज में जो गहरी खाई है, उस प्रथा को और गहरा बनाती है । एक साजिश है, हीनता के भंवर में फंसा देने की । कितनी ही बार दूल्हों को ही नहीं, दुल्हनों को भी बेइंतहा अपमान सहना पड़ता है ।"(जूठन -पृ. 45)

शादी के पहले दिन दूल्हा या दुल्हन को घर-घर घूमकर सलाम करना वास्तव में एक घृणित प्रथा है । वस्तुतः सवर्णों की दृष्टि में दलितों को नीचा दिखाना इनका उद्देश्य है । इस प्रथा के प्रति ओमप्रकाश के मन में असंतोष की भावना दिखाई देना स्वाभाविक है । इतना ही नहीं इसके खिलाफ विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है । अपने मित्र हिरम सिंह के विवाह में सलाम के लिए उसके साथ गये

बाल्मीकि लौटकर अपने पिताजी से यह जानना चाहते हैं कि - “ ये सलाम के लिए जाना क्या ठीक है ?” फिर दोबारा पिताजी से यह कहते हैं - “ अपनी ही शादी में दूल्हा घर-घर घूमे ... बुरी बात है ... बड़ी जाति वालों के दूल्हे तो ऐसे कहीं नहीं जाते ... ये दुल्हन बरला जाकर ऐसे ही घर -घर जाएगी सलाम करने ... (जूठन पृ. - 44) लेखक के पिताजी ने ओमप्रकाश की बात की बड़ी तारीफ की थी । सदियों से प्रचलित इस प्रथा को अपने घर में समाप्त कर दिया था । ओमप्रकाश को मालूम हो गया था कि व्यक्ति पढ़-लिख कर शिणित हो जाने पर जातियाँ सुधारने नहीं, बल्कि जन्म से विखंडित भावना का सूत्रपात करती हैं । दलितों के प्रति जाति प्रथा और छुआ-छूत को लेकर जो सामाजिक अन्याय है इससे दलितों में हिन्दू धर्म के प्रति विमुखता उत्पन्न होना स्वाभाविक है ।

लेखक ने अपनी आत्मकथा में अपनी जाति में प्रचलित परंपरा अंध विश्वास, अंधी आस्ता आदि का विस्तृत वर्णन किया है । चूहड़े जात में विधवा विवाह को मान्या दी गई थी । हिन्दू परंपरा की तरह विधवा विवाह हीन दृष्टि से देखा नहीं जाता था । चूहड़े परिवारों के साली से शादी -विवाह, हारी -बीमारी, जीवन -मृत्यु सभी में सूअर की महत्ता थी । पूजा -अर्चना भी सूअर के बिना अधूरी थी । आंगन में घूमते सूअर गंदगी के प्रतीक नहीं बल्कि सामाजिक समृद्धि के प्रतीक माने जाते थे । चूहड़ जाति में भी कई उपभेद देखे जाते थे - महार, भंगी, चमार और मेहतर आदि । वे भले ही बाह्य रूप से भेद भाव भुलाने की बात कर रहे थे पर आंतरिक रूप से आपस में जूझते थे । सांप्रदायिकता की समस्या से काफी संघर्ष झेलना पड़ता था । चूहड़े जात में अंधविश्वास भरपूर था । काले जादू और टोने -टोटके पर काफी विश्वास था । भूत-प्रेत की छायाओं के प्रति पूरी बस्ती में अजीब माहौल था । जरा भी किसीकी तबीयत खराब होती तो डाक्टर के बजाय किसी भगत को बुलाया जाता था । अक्सर किसी भूत के प्रभाव का जिक्क देवी-देवताओं पर सूअर, मुर्गे, बकरे और शराब चढ़ाये जाते थे । जन्म हो या शादी -ब्याह जैसे शुभ कार्य या मृत्यु भोग में विशेष देवी-देवताओं की पूजा होती थी । बस्ती में जब भी कोई छाया से छुटकारा पाने के लिए झाड़-फूंक, टोने -टोटके, ताबीज, कड़े, भभूत आदि की आजमाइश शुरू हो जाती थी । ये तमाम कार्य रात में किये जाते थे । ढोलक -संगीत का आयोजन होना था । गाने में अशिष्ट शब्दों की भरमार होती थी जो देवताओं के प्रति आत्मीयता दिखाने की अभिव्यक्ति थी । दीपावली पर लक्ष्मी का पूजन नहीं, माई मरदान के नाम पर सूअर का बच्चा चढ़ाया जाता था या फिर कडाही की जाती थी कड़ाही याने हलवा -पूरी का भोग लगाया जाता था । पूजा में सूअर की बली और शराब की बोतल दी जाती थी । किसी भी काम में देवताओं की पूजा जरूरी था । यदि कोई भूल कर जाए या मुकर जाए तो अनिष्ट होने की आशंका बनी रहती थी । चूहड़ों की देवी-देवताओं पर गहरी आस्था थी । ‘पौन’ पिलानेवाला गुरु देवता का आवाहन करता था, तरह -तरह के लालच देवताओं को दिये जाते थे, ताकि देवता नये भगत के शरीर में प्रविष्ट हो सके । ओमप्रकाश इसे

ढोंग ही समझ चुके थे जहाँ आस्था के सामने तर्क, कोई मायने नहीं रखता था । न जाने इन भगतों ने कितने लोगों को मार दिया था । ओमप्रकाश के दो भाई बिना दवा-दारु के सही इलाज के चल बसे थे । हर साल इस प्रकार लोग मरते थे । पर लोगों में इन देवताओं और भगतों के प्रति आस्था कम नहीं होती थी । शादी-ब्याह से पहले देवता के लिए सूअर की बली देनी पड़ती थी । पर ओमप्रकाश ने अपनी शादी से पहले बली चढ़ाने की प्रथा का अंत कर दिया था । वस्तुतः दलित समाज में ऐसी दुर्गति के पीछे गरीबी, अंधविश्वास, अशिक्षा ही उत्तरदायी है । जिसे ओमप्रकाश भली-भांति समझ चुके थे ।

तत्कालीन हिन्दू समाज में सवर्णों के द्वारा दलितों का शोषण, देवी-देवताओं के मंदिर प्रवेश में विरोध आदि के कारण दलितों के मन में हिन्दू धर्म के प्रति अनास्था की भावना उत्पन्न होती थी ऐसी स्थिति में पढ़े-लिखे दलित आदमी भी अपने आप को हिन्दू कहने लायक नहीं समझते थे । लेखक ओमप्रकाशजी को दलितों के प्रति हिन्दुओं की मनःस्थिति ने गहरा दुःख दिया था । उन्होंने इस संबंध में अपने मन की बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है - “लेकिन मन में एक उबाल -सा उठता था जो कहना चाहता था, मैं हिन्दू भी तो नहीं हूँ । यदि हिन्दू होता, तो हिन्दू मुझसे इतनी घृणा, इतना भेदभाव क्यों करते ? बात -बात पर जातीय बोध की हीनता से मुझे क्यों भरते, मन में यह भी आता था कि अच्छा इन्सान बनने के लिए जरूरी क्यों है कि वह हिन्दू ही हो ... हिन्दू की क्रूरता बचपन से देखी है, सहन की है । जीवन श्रेष्ठता का भाव अभिमान बनकर सदा कमजोर को ही क्यों मारता है ? क्यों दलित के प्रति हिन्दू इतना निर्मम और क्रूर है ।” (जूठन -पृ. -54) ।

ओमप्रकाश को हिन्दुओं के आचार-विचार और सवर्णों के प्रति उनके मनोभाव तथा आक्रोश तभी अच्छी तरह ज्ञात हुआ जब उन्होंने अम्बेडकर को पढ़ा था । इतना ही नहीं अम्बेडकर को पढ़कर गांधी के विषय में भी उनकी राय बदली । उन्होंने ‘जूठन’ में लिखा है- “ अम्बेडकर को लेने के बाद यह बात समझ में आ गयी कि गांधी ने हरिजन नाम देखर अछूतों को राष्ट्रीय मुख्यधारा में नहीं जोड़ा, बल्कि हिन्दुओं को अल्प संख्यक होने से बचाया, उनके हितों की रक्षा की यह धारणा भी उन दिनों पुख्ता हो रही थी कि जो शिक्षा स्कूल -कालेजों में दी जा रही है, वह किसी भी रूप में हमें राष्ट्रीय नहीं बनाती है, बल्कि संकीर्ण हिन्दू बनाती है ।” (जूठन -पृ. 89)

इतना ही नहीं पढ़े -लिखे सवर्ण जातियों के लोगों में भी जाति-पांति छूत-अछूत की भावना है । इस संबंध में लेखक ने अपना एक कटु अनुभव का रेखांकन किया है । सन् 1980 के आसपास की घटना है लेखक अपनी पत्नी चंदा के साथ राजस्थान भ्रमण से वाया दिल्ली होकर चंद्रपुर लौट रहे थे । गाड़ी के उसी डिब्बे में बैठे एक पढ़े-लिखे परिवारवालों के साथ उनका संपर्क हुआ । पढ़े-लिखे सभ्रांत युवक किसी एक मंत्रालय के अधिकारी थे । लेखक की पत्नी के साथ उस अधिकारी की पत्नी बड़ी

खुशी से बात कर रही थी । माहौल बड़ा सुखद था । पर बातों -बातों में जब उन्हें पता चला कि वे लोग भंगी जाति के हैं तो अचानक सन्नाटा छा गया । तब से यात्रा की परिसमाप्ति तक वातावरण बड़ा दुखद रहा । लेखक ने अपनी इस गहरी पीड़ा को स्पष्ट करते हुए कहा है - “वक्त बदला है । लेकिन कहीं कुछ है जो सहज होने नहीं देता है । कई विद्वानों से जानना चाहा कि सवर्णों के मन में दलितों, शूद्रों के लिए घृणा क्यों है ? आज जाति एक महत्वपूर्ण घटक है । जब तक यह पता नहीं होता कि आप दलित हैं तो सबकुछ ठीक रहता है, ‘जाति’ मालूम होते ही सब कुछ बदल जाता है । फुसफुसाहटें, दलित होने की पीड़ा, चाकू की तरह नस-नस में उतर जाती है । गरीबी, अशिक्षा, चिन्न-भिन्न दारुण जिन्दगी, दरवाजे के बाहर खड़े रहने की पीड़ा भला अभिजात्मक गुणों से संपन्न सवर्ण हिन्दू कैसे जान पाएंगे ?” (जूठन -पृ. 160)

इस प्रकार ‘जूठन’ आत्मकथा में ओमप्रकाश ने अपने जीवन की मार्मिक घटनाओं के जरिए दलितों की अनकही व्यथा-कथा का व्यापक चित्रण किया है । सचमुच ‘जूठन’ दिल दहला देनेवाली एक दलित लेखक की जीवन कथा है ।

3.1.3 दलित समाज और उसके सुधार में ओमप्रकाश की भूमिका :

हिन्दी दलित साहित्यकारों में ओमप्रकाश बाल्मीकि एक बहुचर्चित नाम है । उनकी आत्मकथा ‘जूठन’ हिन्दी दलित साहित्य में मील का पत्थर मानी जाती है । ओमप्रकाश ने अपनी आत्मकथा के जरिये जहाँ सदियों से चली आ रही असवर्णों के प्रति सवर्णों के मन की भावना में परिवर्तन का प्रयास किया है वहीं समाज में नीच कहे जाने वाली अछूत जातियों में सचेतनता सृष्टि एवं प्राचीन अंधविश्वास, कुसंस्कार आदि हटाकर एक आदर्श सुसंकृत समाज निर्माण का सपना देखा है ।

लेखक जब छोटी उम्र में थे तब अपनी पढ़ाई के समय उन्हें विविध यातनाएँ सहन करनी पड़ी थी । स्कूल में तत्कालीन परिवेश अलग था । दलित छात्रों के प्रति सवर्ण शिक्षकों का मनोभाव स्वस्थ नहीं था । बचपन में स्कूल में कई बार लेखक को लांछित और अपमानित होना पड़ा था । पर ओमप्रकाश इन सारी मुसीबतों का सामना करते हुए आगे बढ़े । अपनी कठोर साधना, धैर्य और निष्ठा के कारण एक अछूत चूहड़ा होकर भी उच्च शिक्षित बन सके । शुरू से ही उनके पिता के मन में इच्छा थी कि बेटा सारी प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते हुए पढ़-लिख कर अपनी जाति का सुधार करे । जाति भाइयों का मार्गदर्शक बने, सदियों से चले आ रहे अछूतों के प्रति अन्याय -अत्याचार का अंत करे । पिताजी की उत्साह भरी वाणी ने उन्हें काफी बल दिया । फलतः लेखक अपने पथ पर हमेशा अडिग रहे । अन्ततः उन्हें कामयाबी मिली । चूहड़े जाति में प्रचलित ‘सलाम’ प्रथा, सवर्णों के

शादी-ब्याह, पर्व-त्यौहार में अछूतों को भोजन दिये बिना 'जूठन' समेट कर ले जाने की प्रथा, जो अछूतों पर सवर्णों का बोझ लादने की आदत थी इनका लेखक ने कड़ा विरोध कर समाप्त किया। लेखक में वैप्लविक चिंतन शुरू से ही दिखाई देता था। असल में सवर्णों की मानसिकता में सुधार लाना वे चाहते थे। वह समय ऐसा था जब सवर्णों के सामने चूहड़े लोग मुँह खोलने से डरते थे, तब लेखक ने ईंट का जवाब पत्थर से दिया। लेखक के बलिष्ठ व्यक्तित्व के सामने सुखदेव सिंह त्यागी जैसे दलितों के कट्टर विरोधी सवर्ण को भी हार खानी पड़ी। लेखक की मां से 'जूठन' उठाकर ले जाने को जिस सुखदेव सिंह त्यागी ने धमकी देकर कहा था और उसकी बेइज्जती की थी उसे अपने घर आने पर लेखकने उसका आदर-सत्कार कर अपनी महनीयता का परिचय दिया था। लेखक के अनुसार - "वही सुखदेव सिंह त्यागी मेरे निवास पर एक बार आया था। मेरी नत्दी ने गांव देहात के बुजुर्ग के नाते उनका आदर-सत्कार किया था। उसने मेरे घर खाना भी खाया था (जूठन -पृ. -21)

लेखक ने समाज में फैले अंध विश्वास, अन्याय-अत्याचार, शोषण आदि का घोर विरोध किया। विविध पत्र-पत्रिकाओं में कई लेखों के जरिये समाज में सचेतनता उत्पन्न करने का प्रयास किया। इतना ही नहीं नाट्य कंपनियों के जरिये नाटक खेल कर जाति भेद वर्ग भेद हटाने का प्रयत्न किया। अपने नाम के साथ बाल्मीकि सरनेम जुड़े रहने के कारण उन्हें कई बार लांछित और अपमानित होना पड़ा। फिर भी वे सरनेम लिखना कभी नहीं भूले। जब कि उस समय चूहड़े जाति के कई दूसरे लोग अपना सरनेम बदल कर सवर्णों की तरह बड़ी जाति के लोग के रूप में परिचय देकर मजे में रहते थे। लेकिन ओमप्रकाश ने ऐसा कभी नहीं किया था। जीवन अंत तक आपने आपको बाल्मीकि के रूप में परिचित रखा। जाति छिपा कर कोई बड़ा नहीं बन सकता, यह उनकी राय थी। नौकरी जीवन की व्यस्तता में रहकर भी ओमप्रकाश समय निकाल कर दलित साहित्य की सृष्टि कर अपने जाति भाइयों को सचेतन करने में काफी हद तक सफल हुए थे। वस्तुतः उनका संपूर्ण जीवन विद्रोह से भरा था। उन्होंने अपनी आत्मकथा में समाज, शिक्षा, नौकरी और साहित्य सभी क्षेत्रों में (भंगी) जाति का होने के कारण मिले अपमान और उपेक्षा की पीड़ा को बड़ी सफलता से उभार कर भारतीय समाज में प्रस्तुत किया है।

दलित युवकों में अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष की आवश्यकता है। पर वे संघर्ष किये बिना जाति छुपा कर समाज में सम्मान पाने के लिए प्रयासशील हैं। युवा समाज के इस प्रकार की मनोवृत्ति हीनमान्यता का परिचायक है। तब तो ओमप्रकाश जी ने अपनी आत्मकथा में अपने परिवार, अपनी जाति का निःसंकोच सब कुछ वर्णन किया है, ताकि इसका प्रभाव आनेवाले दलित पीढ़ियों पर पड़े। इससे उनकी महानता और सुधाआत्मक दृष्टि का परिचय मिलता है। दलितों में अंधविश्वास, कुसंस्कार आदि सदियों से घर कर चुके हैं। दलित समाज में प्रचलित सूअर की बली, शराब पान, बीमार ग्रस्त

व्यक्ति को दवादारु के बदले पूजा -पाठ, झाड़-फूंक आदि का अंतर कर समाज को सुसंस्कार कर इसे आगे बढ़ाने में लेखक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

इस प्रकार ओमप्रकाश बाल्मीकि ने अपनी आत्मकथा 'जूठन' के माध्यम से समाज में फैली जाति- प्रथा, छुआ-छूत, शोषण, ऊँच-नीच की खाई और अनेक कुरीतियों के ऐसे मार्मिक वर्णन किये हैं । जिनसे सामाजिक स्तर में बहुत बड़ा आलोड़न उत्पन्न हुआ है और समाज को बहुत कुछ सोचने - समझने पर विवश कर दिया । फलतः दलित समाज को एक नई दिशा मिली । वस्तुतः ओमप्रकाश बाल्मीकि का दलितों में सुधार लाने का जीवन भर प्रयास सदैव स्मरणीय माना जाता है ।

3.1.5 'जूठन' के नामकरण की यथार्थता :

दलित साहित्य में कविता, कहानी, नाटक आदि साहित्यिक विधाओं की तरह आत्मकथाओं का एक विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान है । हिंदी साहित्य में जहाँ आत्मकथा लिखने की परंपरा प्राचीन नहीं है, आधुनिक है वहीं हिंदी आत्मकथा में दलित आत्मकथा की यह परंपरा मराठी में लिखी गई डॉ. अम्बेडकर की आत्मकथा 'मी कसा झाले' (मैं कैसे बना) की प्रेरणा और प्रभाव से हिंदी दलित साहित्य में आत्मकथा लेखन की शुरुआत हुई । मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने -अपने पिंजरे' के बाद ओमप्रकाश बाल्मीकि कृत आत्मकथा 'जूठन' ने हिंदी साहित्य में एक नए विमर्श का सूत्रपात किया । इस संदर्भ में बजरंग बिहारी तिवारी का कहना है - "आत्मकथा 'जूठन' से गुजरना वस्तुतः उस समाज से गुजरना है, जिसमें घृणा वरेण्य है, शोषण नैतिक है, दमन समाज है, असमानना स्वीकृत है और अत्याचार का अन्तहीन सिलसिला है । इन सबके दार्शनिक आधार भी प्राप्त है, इसलिए ये हमें कचोटते नहीं । इनका नैरन्तर्य हमें गर्व का एहसास कराता है । इससे व्यवस्था की सनातनता पुष्ट होती है । 'जूठन' इस सनातनता की पोल खोलती है, गर्व को 'गर्म' में तबदील कर देती है और दार्शनिक आधार के झूठेपन को बेपर्दा कर जाती है । बचपन से लेकर आजतक जिन दृश्यों, घटनाओं, कृत्यों को हमने सहज माना है, वे हमें असहज, अमानवीय, और कुकृत्य लगने लगते हैं । संस्कारों से भीषण लड़ाई शुरू होती है । हम अपने को कभी संस्कारहीन, तो कभी कुसंस्कारित मानने लगते हैं । सच्चाई का दमकता रूप ऊहापौह तो पैदा ही करता है ।"

(कागज की लेखी का अंतर, हंस पत्रिका 1997)

'जूठन' के लेखक ओमप्रकाश बाल्मीकि के जूझारू व्यक्तित्व ने अपनी आत्मकथा में तत्कालीन सामाजिक परिवेश का यथार्थ चित्रण बड़े सहज और स्वाभाविक ढंग से करते हुए जीवन भर की व्यथा -कथा, मानसिक यंत्रणा और गहरी अनुभूति का एक सफल दस्तावेज है 'जूठन' । लेखक ने

खुद ही लिखा है - “ अपनी व्यथा -कथा को शब्दबान करने का विचार काफी समय से मन में था । लेकिन प्रयास करने के बाद भी सफलता नहीं मिल पा रही थी । कितनी ही बार लिखना शुरू किया और हर बार पन्ने फाड़ दिये ।

* * *

इन अनुभवों को लिखने में कई प्रकार के खतरे थे । एक लंबी जद्दोजहद के बाद मैंने सिलसिलेवार लिखना शुरू किया । तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं, प्रताड़नाओं को एक बार फिर जीना पड़ा, उस दौरान गहरी मानसिक यंत्रणाएँ मैंने भोगीं । स्वयं को परत -दर -परत उधेड़ते हुए कई बार लगा - कितना दुःखदायी है यह सब ! कुछ लोगों को यह अविश्वसनीय और अतिरंजना पूर्ण लगता है ।” (जूठन, लेखक की ओर से -फृ.- 9-10)

वास्तव में दलित आत्मकथा लेखन बड़ा कठिन काम है । ‘जूठन’ के लेखन के दौरान बाल्मीकि को यह अच्छी तरह महसूस हुआ था । वे जब अपनी आत्मकथा लिखने जा रहे थे तब उनके मित्रों में इसीको लेकर कई क्रिया-प्रतिक्रियाएँ हुई थी । लेखक के शब्दों में - “कई मित्र हैरान थे, अभी से आत्मकथा लिख रहे हो । उनसे मेरा निवेदन है - उपलब्धियों की तराजू पर यदि इस व्यथा-कथा को रखकर तौलोगे तो हाथ कुछ नहीं लगेगा । एक मित्र की यह सलाह थी कि मैं आत्मकथा लिखकर अपने अनुभवों का मलूधन खा रहा हूँ । कुछ का यह भी कहना था कि खुद को नंगा करके आप अपने समाज की हीनता को ही बढ़ाएंगे । एक बेहद आत्मीय मित्र को भय सता रहा है । उन्होंने लिखा - “आत्मकथा लिख आप अपनी प्रतिष्ठा ही न खो दें ।” (जूठन, लेखक की ओर से, पृ. -9-10)

ओमप्रकाश को बचपन से लेकर जीवन के अंतिम समय तक सवर्णों के अन्याय -अत्याचार, शोषण, उत्पीड़न, जातिगत भेद-भाव से तिरस्कर, घृणा और अपमान का पात्र बन कर जीना पड़ा । समाज व्यवस्था की सारी अमानवीयता शिकार होकर वे चुपचान नहीं बैठे बल्कि इनका तीव्र विरोध किया । उन्होंने जीवन की सारी व्यथा-कथा को अपनी आत्मकथा में समेट कर दलितों में चेतना उत्पन्न करने का भरसक प्रयास किया ।

‘जूठन’ पाठकों के दिल दहला देनेवाली दलितों की व्यथा-कथा है । लेखक ने समाज में अछूत कहलानेवाली भंगियों की बस्ती की दर्दनाक स्थिति उभार कर जीवन की सच्चाई को खोलकर उपस्थापित किया है । लेखक के शब्दों में - “ जोहड़ी के किनारे पर चूहड़े के मकान थे , जिनके पीछे गांव भर की औरतें जवान लड़कियाँ बड़ी-बूढ़ी यहाँ तक कि नई नवेली दुल्हनें भी इसी डब्बोवाली के किनारे खुले में टट्टी -फराग के लिए बैठ जाती थी । रात के अंधेरे में ही नहीं, दिन के उजाले में भी पर्दों में रहनेवाली त्यागी महिलाएँ, घूँघट काढ़े, दुशाले ओढ़े इस सार्वजनिक खुले शोचालय में निवृत्ति पाती

थी । तमाम शर्म -लिहाज छोड़कर वे डब्बोवाली के किनारे गोपनीय जिस्म उघाड़ कर बैठ जाती थी । इस जगह गांव भर के लड़ाई -झगड़े गोलमेज कानफ्रेंस की शकल में चर्चित होते थे । चारों तरफ गंदगी भरी होती थी । ऐसी दुर्गंध कि मिनट भर में सांस घट जाए । तंग गलियों में घूमते सूअर, नंग धड़ंग बच्चे, कुत्ते, रोजमरा के जगड़े, बस यह था वातावरण जिसमें बचपन बीता । इस माहौल में यदि वर्ण व्यवस्था को आदर्श व्यवस्था कहनेवालों को दो -चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी ।”

(जूठन , पृ. -11)

ऐसे वातावरण में लेखक का बचपन बीता । लेखक के पांच भाई -बहन एक बहन, दो चाचा , एक ताऊ वहीं पर रहते थे । चूहड़े परिवारों के बच्चे शिक्षा से कोसों दूर थे । पर ओमप्रकाश को बड़ी परेशानियों के बाद स्कूल में दाखिला मिला । देश को आजादी मिले आठ साल हो गये थे । गांधी के अछूतों का जोरशोर प्रचार था । पर इसका प्रभाव समाज और सामाजिक स्तर पर बिलकुल देखने नहीं मिलता था । ओमप्रकाश जात चूहड़ा मालूम होते ही स्कूल के हेडमास्टर ने कहा -“ ठीक है ... वह जो सामने शरशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा और दहनियाँ तोड़ के झाड़ू बना ले । पत्तों वाली झाड़ू बनाना और पूरे स्कूल को ऐसा चमका दे जैसा सीसा । थारा तो यह खानदानी काम है । जा फटाफट लग जा काम पे ।” (जूठन -पृ. 15)

ओमप्रकाश ने दो दिन झाड़ू लगाये । इसके बाद झाड़ू लगाना बंद कर दिया तो हेडमास्टर ने उन्हें भेदी गालियां देकर उनकी गर्दन दबोच ली । लेखक कहा -“जा लगा पूरे मैदान में झाड़ू ... नहीं तो गांड में मिर्ची डाल कर स्कूल से बाहर निकाल दूंगा ।” (जूठन -पृ. 15) इस प्रकार बहुत सी घटनाओं के जरिए ओमप्रकाश ने तत्कालीन स्कूल परिवेश में दलित बच्चों की शिक्षा प्राप्ति में कैसी अड़चनें पैदा होती थी और इन्हें अपमानित और लांछित होना पड़ता था । इसकी उपस्थापना की है । इतना ही नहीं उन्होंने अपनी प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा की परिसमाप्ति तथा नौकरी जीवन में सवर्णों द्वारा घृणित , अपमानित होने की विविध बातों को अपनी आत्मकथा में गुंफित किया है । तत्कालीन बाल्मीकि समाज में प्रचलित निन्दनीय सलाम प्रथा का घोर विरोध कर लेखक ओमप्रकाश ने लिखा है -“ देखने, सुनने में बहुत साधारण सी बात लग सकती है, लेकिन दुल्हा या दुल्हन सदियों से चली आ रही इस प्रथा के पार्श्व में जातीय अहं की पराकाष्ठा है । समाज में जो गहरी खाई है, यह प्रथा और गहरी बनाती है । एक साजिश है, हीनता के भंवर में फंसा देने की । कितनी ही बार दूल्हों को ही नहीं, दूल्हनों को भी बेइंतहा अपमान सहन पड़ता है ।” (जूठन -पृ. 45)

सलाम की प्रथा वास्तव में दलितों को नीचा दिखाने के लिए उद्दिष्ट थी । इस प्रथा को लेकर लेखक के मन में तीव्र प्रतिक्रिया दिखाई पड़ती है । शादी के पहले दिन घर-घर घूमकर सलाम करना जैसी घटना दलितों को नीचा दिखा रही थी । मित्र हिरण सिंह के विवाह से लौटकर अपने पिताजी से

लेखक यह जानना चाहते हैं कि - “ ये सलाम के लिए जाना क्या ठीक है ? ” फिर अपने पिताजी से यह कहते हैं - “ अपनी ही शादी में दूल्हा घर-घर घूमे ... बुरी बात है .. बड़ी जात वालों के दूल्हे तो ऐसे कहीं नहीं जाते ... ये दुल्हन बरला जाकर ऐसे ही घर -घर जाएगी सलाम करने (जूठन -पृ. 44) लेखक की इस बात ने उनके पिताजी को बहुत प्रभावित किया । उन्होंने इस रीत को अपने ही घर से पहली बार तोड़ा । लेखक के भाई-बहन की शादी के उत्सव पर यह प्रथा हटा दी गई ।

भारत वर्ष में जाति प्रथा का यह भयंकर रूप किसी के जन्म से लेकर ही दिखाई देता है । शिक्षा -दीक्षा प्राप्त दलित भी सवर्णों के सामने अपनी जाति की नीचता के कारण हीन माने जाते हैं । सवर्ण, असवर्ण सब हिन्दू संप्रदाय में आते हैं । पर दलितों को सवर्णों की तरह मंदिर में जाना, पूजा - पाठ करना जैसे कामों में बाधा दी जाती है । दलितों के प्रति सवर्ण हिन्दुओं की क्रूरता वस्तु: समाज में एकता के बदले खंडित भावना उत्पन्न करती है । ओमप्रकाश की ओलच्य आत्मकथा में प्रस्तुत घटना है -जूठन समेटना और खाना । इस घटना के आधार पर आत्मकथा का नामकरण । ‘जूठन’ रखा गया है । शादी -ब्याह के मौकों पर जब मेहमान या बराती खाना खा रहे होते थे तब चूहड़े दरवाजों के बाहर बड़े-बड़े टोकरे लेकर बैठे रहते थे । बरात खाना खा चुकने पर जूठी पत्तलें उन टोकरों में डाल दी जाती थीं । इन्हें घर ले जाकर चूहड़े खाते थे । बचे -खुचे पूड़ी के टुकड़े एक आध मिठाई का टुकड़ा या थोड़ी बहुत सब्जी पत्तल पर पाकर बांछें खिल जाती थी । जूठन चटखारे ले लेकर खाई जाती थी । अक्सर ऐसे मौकों पर बड़े-बूढ़े ऐसी बारातों का जिक्र बहुत ही रोमांचक लहजे में सुनाया करते थे कि उस बारात में इतनी जूठन आई थी कि महीनों तक खाते रहे थे । लेखक ने जूठन को लेकर अपनी मार्मिक अनुभूति और एक ऐसा आँखों देखा विवरण प्रस्तुत किया है जो किसी का हृदय पिघला देने में समर्थ है । बारात खाना खा रही थी लेखक की मां टोकरा लिए दरवाजे के बाहर बैठी थी । लेखक और उसकी छोटी बहन माया अपनी मां से सिमटे बैठे थे । भीतर से मिठाई और पकवानों की महक आ रही थी । लेखक और उसकी बहन को उम्मीद थी कि उन्हें ये सारी चीजें खाने को मिलेगी । सब लोग खाना खाकर चले जाने के बाद लेखक की मांने सुखदेव सिंह त्यागी को दालान से बाहर आते हुए देखकर कहा - “ चौधरी जी, इब तो सब खाना खाके चले गये -.. म्हारे जाकतों(बच्चों) कूं भी एक पत्तल पर घर के कुछ दे दो । वो बी तो इस दिन का इन्तजार करते हैं । ” तब लेखक की मां की बात सुन कर सुखदेवसिंह त्यागी ने जूठी पत्तलों से भरे टोकरे की तरफ इशारा करके कहा - “टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है ... ऊपर से जाकतों के लिए खाना मांग री है ? अपनी औकात में रह चूहड़ी । उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन । ”जूठन -पृ. 21) सुखदेवसिंह की यह बात सुनकर लेखक की मांने दुर्गा का भयंकर रूप धारण किया था । उसने टोकरा वहीं बिखेर कर सुखदेव सिंह से कड़ा जवाब दिया - “इसे डाके अपने घर में धर ले । कल तड़के बारातियों को नाशते में खिला देणा... । ” (जूठन -पृ. -21) लेखक की आत्मकथा

में कई महत्वपूर्ण घटनाओं का समावेश है । लेकिन इन घटनाओं में जूठन की यह घटना आत्मकथा के केन्द्र में है । आत्मकथा का नामकरण 'जूठन' सही और समीचीन है ।

3.1.6 भाषा :

'जूठन' आत्मकथाओं में अत्यंत महत्व रखती है । ओमप्रकाश ने इसे प्रथमपुरुष शैली में रचा है । शुरू से अंत तक कथानक में सर्वत्र मौजूद है । अतः लेखक ने आत्म शैली का ही प्रयोग रखा है । इससे प्रवाह में कहीं रूकावट नहीं आती । लेखकीय ईमानदारी से घटना की विश्वसनीयता बनी रहती है । लेखक ने पूरे कथानक में कई नाटकीय प्रसंग रखे हैं । वे कथा को ईमानदारी से प्रस्तुत करते हैं, ऐसा कहीं झूठा रंग देने या अतिशयोक्ति के लिए नहीं हुआ है । इस कथानक में चौधरी से लेकर बालक तक विभिन्न स्तर के पात्र हैं । सवर्ण और दलित हर तरह के चरित्र हैं । उनकी भाषा लक्षणीय है । यद्यपि पूरी कथा खड़ी बोली में है । पर ओमप्रकाश के पिता या मां या चौधरी के व्यंग्यभरे वाक्यों की भाषा में लोक स्तर खूब सहज और समावेशी हुआ है ! ओमप्रकाश की भाषा पर पकड़ गालियों के प्रयोग, भदेस स्थितियों के विवरण में संकोच अथवा अनावश्यक उग्रता नहीं मिलती । यथार्थ चित्रण के लिए जो -जो वर्णन जरूरी था, उसे उतना उघाड़ा है, उससे अधिक नहीं । 'सलाम' प्रथा का घृणित रूप ओमप्रकाश ने संकेत में दिया है । उसी प्रकार दलितों के प्रति क्रूरता संबंधी संभाषण भी बहुत संक्षेप में है । लेखक उनका संयत भाषा में संकेत भर देता है । यह उनकी सशक्त शैली का संकेत है । पूरे कथानक में जगह-जगह लोक प्रचलित यथार्थ शब्दों का प्रयोग इस आत्म कथा को मार्मिक बना देता है । फिर भी लेखक का जगह-जगह संयम इसे एक महत्वपूर्ण कृति बना देता है । वरना फूहड़ भाषा की भरपूर उसे एकपक्षीय और असंतुलित विषोद्गार बना देता । उसी प्रकार भाषा प्रयोग में जातिगत लच्छों का प्रयोग बहुत उपयुक्त किया है ।

3.1.7 आत्मकथा के रूप में मूल्यांकन :

हिंदी में दलित आत्मकथाओं में इसका स्थान महत्वपूर्ण है । मराठी में अम्बेडकर ही नहीं अन्य कई आत्मकथायें प्रतिष्ठित हो चुकी थी । परंतु ओमप्रकाश ने हिंदी में दलित जीवन को उसी प्रकार प्रकाशित किया जैसे प्रेमचन्द ने होरी किसान को ।

'जूठन' एक प्रथा का नाम नहीं था, जो सदियों से दलितों के साथ जुड़ी थी, यह कलंक था जो माथे पर टीके-सी बैठी । आत्मकथा में लेखक उसे समूल उखाड़ता है - बिना कोई शोर, नारे या

विद्रोहात्मक उत्तेजना के । समाज में लेखक परिवर्तन की धारा इसी तरह लाने का पक्षधर है - वह घृणित प्रथा 'सलाम' को भी वैसे ही मिटाता है । इस प्रकार दलित वर्ग का स्वाभिमान लाने का महत्वपूर्ण प्रयास 'जूठन' में हुआ है । इसमें शिक्षा के बाधक तत्वों का उल्लेख है । पर लेखक अपने को कहीं महिमा मंडित नहीं करता । अपने माध्यम से दलित के श्रमजीवन को मंडित कर रहा है । यह व्यक्ति की आत्मकथा तो है । परंतु समकालीन समाज का जीवंत चित्र है जो हमें सोचने और बहुत कुछ करने को प्रेरित करता है । इसीमें आत्मकथा की सार्थकता प्रकट हो रही है ।

(2) आत्मकथा - 'तिरस्कृत'

3.2.1 दलित साहित्यकार सूरजपाल चौहान जी का परिचय :

हिंदी दलित साहित्यकारों में सूरजपाल चौहान का नाम अलग महत्व रखता है । कवि और कलाकार के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त चौहान ने आत्मकथा 'तिरस्कृत' लिखकर हिंदी दलित साहित्य को और भी समृद्ध किया है । आपका जन्म 20 अप्रैल, 1955 ई. में उत्तरप्रदेश के अलीगढ़ जिले के फुसावली जनपद में हुआ था । उनके पिता का नाम श्रीरोशनलाल है । लेखक एक संयुक्त परिवार के सदस्य हैं । उनके घर की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी । घर में चाचा और अन्य कई सदस्य थे जो गांव के ठाकुरों के घर में काम -काज करते थे । लेखक भंगी परिवार से थे । गांव के भंगी और चमारों को बसीठों(सवर्णों) की बेगारी करनी पड़ती थी । तत्कालीन जमाने में सरकारी दफ्तरों में भंगियों और चमारों को नौकरी मिलना कठिन था । दूसरी बात सरकारी नौकरी में आने के लिए किसी भी व्यक्ति को शिक्षित होना जरूरी है । दलितों के लिए शिक्षा प्राप्ति एक समस्या बनी थी । स्वातंत्र्योत्तर भारत में धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन आने लगा । लेखक के पिता साफ-सफाई का काम करते थे । बाद में उन्हें भारत सरकार के उपक्रम(एस.टी.सी ऑफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली) में एक सफाई कर्मचारी के रूप में नियुक्ति मिली और वे वहीं से सेवानिवृत्त हुए । लेखक सूरजपाल चौहान अपनी शिक्षागत योग्यता और प्रतिभा के बल पर अब इसी कार्यालय में मुख्य प्रबंधक के रूप में कार्य कर रहे हैं ।

लेखक सूरजपाल की प्राथमिक शिक्षा अपने गांव की पाठशाला में पूरी हुई थी । सूरजपाल की माता बड़ी मेहनती महिला थी । पति के दिल्ली में रहने के कारण उन्हें बालबच्चों की देखभाल और

घर की सारी जिम्मेदारी निभानी पड़ती थी । दीर्घ समय तक वे बीमार रहीं । उपयुक्त चिकित्सा के अभाव में उनकी मृत्यु स्वल्पायु में हो गई । माता की मृत्यु के बाद पिता रोशनलाल बेटे को अपने साथ दिल्ली ले गये । वहीं उनकी पढ़ाई शुरू हुई । दिल्ली में उनका बचपन खान मार्केट के पास सिमिट्री की झुगियों में तथा झुग्गी टूट जाने के बाद नेशनल स्टेडियम की दर्शक दीर्घाओं में बीतता है । उनकी शिक्षा खान मार्केट के नगर-निगम प्राथमिक विद्यालय से शुरू होती है । अपने गांव की पाठशाला में पढ़ते समय लेखक को कई बार सवर्ण-अध्यापकों की घृणा और क्रोध का शिकार होना पड़ता था । पर दिवानन्द आर्य हायर सेकेण्डरी स्कूल, लोधी रोड, नई दिल्ली से हायर सैकेण्डरी की परीक्षा पास की । जाति का पुछल्ला ब्रह्मराक्षस की तरह सदैव मेरे पीछे लगा रहा । संस्कृत विषय पढ़ानेवाले अध्यापक वेदपाल शर्मा मुझे समय-समय पर जाति का ओछापन याद दिलाते रहते । मैं तड़प उठता था उस द्रोणाचार्य की बातें सुनकर । एक दिन अपने साथी अध्यापकों से मेरी ओर संकेत कर उसने कहा - “यदि देश के सारे चूहड़े-चमार पढ़ लिख गए तो गली-मौहल्लों की सफाई और जूते बनाने का कार्य कौन करेगा ?” (तिरस्कृत -पृ. -13)

माध्यमिक और उच्चाध्यापिक शिक्षा की परिसमाप्ति के बाद दिल्ली के भगतसिंह कालेज में उनका दाखिला हुआ । वहीं से वे स्नातक डिग्री लेकर निकले । उनका अध्ययन बड़ी कठिनाई से समाप्त हुआ । पैसे की कमी के कारण छुट्टी में वे दैनिक भत्ते में काम करते थे । आठवीं कक्षा में पढ़ते समय एक झाड़ूदार की अनुपस्थिति में उनकी जगह पर दो महीने (ग्रीष्मवकाश में) उन्होंने जीवन बीमा निगम ऑफिस में झाड़ू लगाने का काम किया था । जिस दिन उन्हें अपनी मेहनत के रुपये मिले उस दिन निगम के खंजाची पी.कुमार ने उनके पिता से कहा था - “पांच रुपये कमाने के चक्कर में बच्चे का जीवन बर्बाद मत करो, इसे खूब पढ़ाओ, लिखाओ । आज यह पांच रुपये कमा रहा है, कल जब यह पढ़ेगा तो पचास रुपये रोज कमालेगा ।” (तिरस्कृत -पृ. 49)

उस दिन के बाद पिताजी ने उनकी पढ़ाई की सारी जिम्मेदारी अपने कंधों पर ले ली । लेखक को और झाड़ू लगानी नहीं पड़ी । उस समय केवल गांव के सवर्णों में दलितों के प्रति घृणा की भावना नहीं थी, बल्कि शहरों में भी जाति व्यवस्था और छुआ-छूत की ऐसी बीमारी फैली थी । दिल्ली में रहते समय अपने अध्ययन काल से लेकर नौकरी करते वक्त लेखक को कई बार घृणा परंपरा का शिकार होना पड़ा था । तत्कालीन समाज में नीच और अछूत कहलाने वाले भंगी परिवार में जन्म लेने वाले सूरजपाल को अपने मित्रों में अपनी पहचान करने के लिए कुछ तरीके अपनाने पड़ते थे । एक जगह पर लेखक ने इस बात का उल्लेख करते हुए लिखा है - “मैंने अपने नाम के साथ अपना गोत्र-‘चौहान’ का प्रयोग करना शुरू कर दिया । अब कॉलेज के साथी मुझे राजपूत या ठाकुर समझते थे । कॉलेज में मेरा

एक सहपाठी अनुपम जैन मेरा प्रिय बन गया । लेकिन कब तक ? जब तक कि वह मुझे राजपूत चौहान समझता रहा । पर मेरा एस.सी. होना जानकर उसने मुझसे मित्रता तोड़ दी ।” (तिरस्कृत -पृ.)

शिक्षा की परिसमाप्ति के बाद उन्हें भारत सरकार के उपक्रम एस.टी.सी. नई दिल्ली में सहायक पद पर नियुक्ति मिली । उस समय उनकी उम्र 25-26 साल की थी । उनकी शादी भी हो गई थी । उसी आफिस के विविध पदों पर विविध जगहों में काम करते हुए वे आजकल वहीं मुख्य प्रबंधक के रूप में कार्य कर रहे हैं । अनुसूचित जाति के सदस्य होने के नाते उन्हें अपने नौकरी जीवन के कार्यकाल में कई बार लांछित और अपमानित होना पड़ा था । लेखक ने इन समस्त घटनाओं को बड़ी सफाई के साथ अपनी आत्मकथा ‘तिरस्कृत’ में स्थानित किया है । दिल्ली में रहते समय वे साहित्य जगत से जुड़े । वे पहले पहल सवर्ण रचनाकारों और बुद्धिजीवियों की साहित्यिक -बौद्धिक गति-विधियों से जुड़े । कई कारणों से वे सवर्ण साहित्यकारों के विचार से एकमत नहीं हो पाये । कई साहित्यिक कार्यक्रमों में भाग लेने के बाद उन्हें महसूस हुआ कि सवर्ण साहित्यकारों की विशेष पूछ है । धीरे-धीरे सवर्णों के साहित्यिक मंच और लेखन से उनका मोह भंग हुआ । क्रमशः वे दलित पक्षधर के लेखन से जुड़ गये । तब तक हिंदी में दलित साहित्य लेखन की परंपरा प्रारंभ हो गई थी । उन्होंने तत्कालीन दलित साहित्यकारों से प्रभावित होकर लिखना शुरू किया । ‘प्रयास’ उनका पहला काव्य संग्रह है । इसके प्रकाशन के बाद लेखक को काफी प्रशस्ति मिली थी । इस पुस्तक की भूमिका में विशिष्ट दलित साहित्यकार ओमप्रकाश बाल्मीकि ने लिखा है- “ कवि सूरजपाल चौहान के संस्कार स्मृतियों की तरह कविता में आते हैं और देर तक सर्द-गर्म लू थपेड़ों का अहसास बनाये रखते हैं । ग्रामीण संस्कार जब शहरी सभ्यता में उठते संस्कारों, जोड़-तोड़ के समीकरणों और राजनीतिक स्तर पर पनपते, फलते - फूलते उग्रवाद को देखते हैं । खुद को गूंगा महसूस करने लगता है । यह गूंगापन मात्र एक प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि विषमता, संकीर्णता और जातीय वैमनस्य के प्रति विरोध को जन्म देता है । कवि आह्वान करना चाहता है । ऐतिहासिक पात्रों का राजद्वेष उसकी स्मृतियों को उद्वेलित करता है । (प्रयास, सूरजपाल चौहान -पृ. - 7, भूमिका)

लेखक सूरजपाल चौहान की अन्य कृतियाँ हैं । ये -कहानी संग्रह ‘हैरी -कब आयेगा’, आत्मकथा ‘तिरस्कृत’, संपादन - ‘हिंदी के दलित कथाकारों की प्रकाशित पहली कहानी’, कविता - संग्रह “ ‘प्रयास’ और ‘क्यों विश्वास करूं’, बाल कविताएँ - ‘बच्चे सच्चे किस्से’ और ‘मधुर बाल गीत’ । इनके अलावा इनकी बहुत सी रचनाएँ देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं । एक दलित साहित्यकार के रूप में उनकी प्रसिद्धि देश के कोने-कोने तक पहुँच चुकी है ।

3.2.2 तिरस्कृत : एक नजर

मोहन दास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने -अपने पिंजरे' और ओमप्रकाश बाल्मीकि की 'जूठन' के बाद सूरजपाल चौहान का तिरस्कृत साहित्यिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण आत्मकथा है। लेखक ने अपनी आत्मकथा में ऐसे कई मार्मिक प्रसंगों की उपस्थापना की है जिससे भी पाठक के मन में गहरी सहानुभूति पैदा होती है। 'तिरस्कृत' को तीन भागों में देखा जाना चाहिए। इन तीन भाग में परिवार के टूटने बिखरने से लेकर देश में व्याप्त सवर्ण मानसिकता तक है।

लेखक उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले के फुसावली जनपद में एक संयुक्त परिवार में जन्मे थे। आर्थिक दुर्गति की चरम विपन्नता का शिकार उनका बचपन बड़ी कठिनाई से बीता था। तथाकथित सवर्ण समाज की दृष्टि में भंगी -चमार परिवार के लोग असभ्य माने जाते थे। लेखक भंगी परिवार की संतान थे। भंगी चमारों पर सवर्णों का अन्याय -अत्याचार, निर्मम-निष्ठुर व्यवहार दिनों दिन बढ़ता जा रहा था। लेखक ने इन्हें कई प्रसंगों के जरिये उपस्थापित किया है। भंगी -चमारों के बच्चे शिक्षा से काफी दूर थे। गांव में पाठशाला होते हुए भी उन्हें पढ़ने का अधिकार नहीं था। लेखक ने सन् 1962-63 की बात कही है। उनके गांव में पादरी बाबूलाल मसीह पढ़ाने आते थे। उन्हीं के कारण लेखक की दो भंगी परिवार के बच्चों के मन में पढ़ने की इच्छा हुई। वे गांव की पाठशाला में पढ़ने गये। पर पहले पहल इन्हें सवर्ण अध्यापकों की हीन दृष्टि का शिकार होना पड़ा। लेखक ने उन दिनों की घटनाओं की याद दिलाते हुए लिखा है - "हम तीनों भंगी मोहल्ले के बालकों को गांव की पाठशाला में पढ़ रहे सभी बच्चों से दूर पीपल के नीचे बैठने को कहा जाता। ... कभी -कभी मास्टर को ध्यान आ जाता तो हमारी घोटा लगी तख्तियों पर पेंसिल से हरफ खींच जाते और हम उन हरफों पर खड़िया पोत लिया करते थे। कई माह तक हम तीनों परिवार के सदस्य इसे ही स्कूल जाना और पढ़ना समझते थे।" लेखक दिवानचंद आर्य हायर सेकेण्डरी स्कूल, लोधी रोड, नई दिल्ली में पढ़ रहे थे। संस्कृत विषय पढ़ानेवाले अध्यापक वेदपाल शर्मा उन्हें समय-समय पर जाति का ओछापन याद दिलाते रहते। एक दिन अपने साथी अध्यापकों से मेरी ओर संकेत कर उसने कहा था - यदि देश के सारे चूहड़े-चमार पढ़-लिख गए तो गली -महौल्लों की साफ-सफाई और जूते बनाने का कार्य कौन करेगा?"

(तिरस्कृत -पृ. -13)

कॉलेज में पढ़ते समय लेखक को अपने नाम के साथ अपना गोत्र 'चौहान' का प्रयोग करना पड़ता था । इससे कॉलेज के साथी उन्हें राजपूत या ठाकुर समझते थे । पर लेखक का अनुसूचित (एस.सी) होना जानकर उनके मित्रों ने उनसे मित्रता तोड़ दी । लेखक के अपने मित्र अनुपम के साथ गाढ़ी मित्रता थी । अनुपम के विवाह के बाद अनुपम अपनी पत्नी के साथ आते जाते थे । लेकिन लेखक के एस.सी. होने का पता लग जाने पर अनुपम और उसने परिवारवालों ने लेखक से नाता ही तोड़ लिया । (तिरस्कृत -पृ. -13) । बचपन की बहुत सी घटनाओं का मार्मिक लेखकी आत्मकथा 'तिरस्कृत' में देखने को मिलता है । वस्तुतः भंगी समाज के चित्रण में यह 'तिरस्कृत' ओमप्रकाश बाल्मीकि की 'जूठन' से बहुत आगे है ।

मां की मृत्यु के बाद लेखक दिल्ली चले गये । दिल्ली में उनके पिता एक झाड़ूदार का काम करते थे । पिताजी के पास रहकर लेखक ने पढ़ाई शुरू की और वहीं उन्होंने बी.ए. की परीक्षा पास की । दिल्ली जाने से पहले गांव में उनका बचपन कैसे बीता था इसका कुछ मार्मिक विवरण आत्मकथा 'तिरस्कृत' में देखने को मिलता है । गांव में सवणों के शादी-ब्याह पर लेखक की मां जूठन बटोरने के लिए वहाँ जाती थी । लेखक भी अपनी मां के साथ जाते थे । लेखक के द्वारा जूठन बटोरने का इस काम का मार्मिक चित्रण मिलता है । जब मां जूठी पत्तल से जूठन बटोर रही थी तब बेटा सूरजपाल एक डंडा लेकर झपटने को आए कुत्तों को दूर रखने में तत्पर थे । भंगी-चमारों के परिवारों में सूअर का मांस बड़े आनन्द से खाया जाता था । सूअर को पकड़ना बड़े मुश्किल की बात थी । सूअर का मांस सही ढंग से काटना भी बड़ा मुश्किल था । सूअर की चर्बीयुक्त खाल को 'तिक्क' कहते हैं । भंगी-चमार के बच्चे इसे मुँह में डाल स्वाद से चबाते हैं । सूअर के पेशाब की थैली से पेशाब निकाल कर बच्चे इसे गुब्बारे की तरह मुँह फुलाकर खेलते थे और उसकी डफली बनाकर बजाते थे । गरीबी की ऐसी दर्दनाक स्थिति का रेखांकन करते हुए लेखक ने अपनी अनुभूति का बड़ी सच्चाई से वर्णन किया है । तत्कालीन समाज में ठाकुरों के घर में भंगी-चमारों की स्त्रियां काम करती थी । उनपर काफी अत्याचार हो रहा था । लेखक ने अपनी आत्मकथा में एक लोमहर्षक घटना का याद दिलाते हुए लिखा है कि एक दिन उसकी मां बहुत बीमार थी । अपनी बीमारी के कारण वह कई दिन ठाकुरों के घर काम करने नहीं जा पाई थी । ठाकुर उसे बुलाने आये तो मांने अपनी बीमारी की बात कहते हुए असमर्थता प्रकट की । तब ठाकुर ने लेखक की ओर संकेत करते हुए कहा - “ तुम्हारे पीछे खड़ा यह हाथी नहीं जा सकता ... ? पकड़ा इसके हाथ झाड़ू और टोकरा । ”

लेखक ने बचपन में बीती बहुत सी घटनाओं का रेखांकन करते हुए भंगी-चमारों के घर शादी-ब्याह के अवसर पर सूअर की हत्या के हृदय विदारक दृश्य का चित्रण किया है । “ ताऊ सरूपा की बेटा रूपाली की शादी का दिन था । उस दिन मोहल्ले में बड़ी चहल-पहल थी, बारातियों और

नाते-रिश्तेदारों को दावत के लिये सूअर मारा गया था । उस सूअर की दर्दनाक चीखें आज भी मेरे कानों में साफ सुनाई पड़ रही है, सूअर को दौड़ा-दौड़ा कर थका देना फिर धर दबोचना और गांव के मुबरसी नाम के अधेड़ उम्र के व्यक्ति दावरा लोहे की पैनी नोंक वाले एक हथियार को सूअर की बगल में भौंक देना । उफ ! सूअर का भयंकर पीड़ा के साथ तड़पना और थोड़ी देर बाद उसके शरीर का टंडा पड़ जाना, आज भी एक-एक घटना चलचित्र की भाँति मेरी आँखों के सामने घूम रही है ।”

(तिरस्कृत -पृ. -22)

लेखक ने तत्कालीन समाज में अछूतों पर सर्वार्ण ठाकुरों की घृणा, जरा-सा छू जाने पर अपने ऊपर पानी के छींटे डालना आदि बातों पर प्रकाश डाला है । साथ ही अछूत पुरुषों के साथ ठाकुरों की स्त्रियों के अनैतिक संबंध का बड़ी बारीकी से वर्णन किया है । एक घटना की याद दिलाते लेखक ने कहा है - “ एक दिन जब मैं दिशा-मैदान के लिए अरहर के खेत में बैठा तो कुछ फुसफुसाहट कानों में पड़ी । मैं देखकर दंग रह गया । ठकुराइन और चाचा आपतिजनक अवस्था में थे । ये दोनों मुझे देखकर सकपका कर रह गये । ठकुराइन के चेहरे की हवाइयां उड़ गयी थी । चाचा से कुछ बन नहीं पा रहा थर । बस, वह मेरे ऊपर लात-घूसे से पिल पड़ा । उस समय चाचा ने मेरे ऊपर थप्पड़ों की बोछार की । मैं भौचक्का उस समय कुछ समझ नहीं पाया । चाचा ने मेरे कान एंठते हुए कहा - “ सुजपला, तूने यह बात किसी और कूं बताई तो तोये जिन्दा ही धत्ती में गाड़ दूंगा ।” (तिरस्कृत -पृ. -37)

लेखक ने सिर्फ जातिभेद की समस्या ही नहीं, कई तरह के पिछड़ेपन और उसके दुस्परिणामों की चर्चा बड़े ही निष्पक्ष और निर्भीक भाव से की है । लेखक ने अपने समाज की विविध कुरीतियों को स्वीकार करते हुए लिखा है - “ हमारे दलित समाज के लोगों में वैसे तो कई कुरीतियां हैं, लेकिन जो सबसे भयंकर और गंभीर बुराई है कि इस समाज में बच्चों का शादी-ब्याह गुड़िया का खेल समझकर बचपन में ही कर दिया जाता है जिसके कारण वे जीवन -संग्राम में पिछड़ जाते हैं । मैं पांचवीं कक्षा में पढ़ता था मेरे विवाह की बात पिता ने चला दी । टीका तक कर गये थे लड़की वाले । पिता के सामने बार-बार गिड़गिड़ाने और कई दिनों तक रोते रहने पर वह इस बात के लिए तैयार हुए कि ठीक है यदि पढ़ना है तो दसवीं कक्षा पढ़ने के बाद वह मेरी शादी करेंगे । उस समय लड़की वालों के सामने यह शर्त रखी और लड़की वाले भी पिता की बात मान गये थे ।” (तिरस्कृत -पृ. -50)

दिल्ली शहर में भी छुआछूत से उनका पीछा छूट नहीं पाया । ब्राह्मणों का प्राधान्य और समाज के चूहड़े -चमारों की स्थिति कही नहीं जाती, जिसका वर्णन लेखक ने बड़ी मार्मिकता के साथ वर्णन किया है । अपनी जाति को छिपा कर अपनी असलियत को छिपाने के लिए लेखक का प्रयास अत्यन्त सराहनीय है । दिल्ली के भजसिंह कॉलेज में आते -आते सूरजपाल चौहान बन जाता है,

फलतः कुछ दिनों तक लेखक के साथ उन्हें ठाकुर समझते रहे । पर अंत में सहपाठियों को उनकी असली जाति का पता चल जाता है । तब सहपाठियों के मन में लेखक के प्रति जातिगत भावना को लेकर वैमनस्य उत्पन्न होता है । सूरजपाल पढ़ लिख कर, उच्चशिक्षित बन गये । नौकरी पाकर अपने घर के मालिक बन गए । वे घर के बाहर जिस ऑफिस में काम करते थे वहाँ की स्थिति अलग थी । ऑफिस में सूरजपाल की नौकरी के मालिक उनसे ऊँचे पदों पर बैठे ऊँची जातियों के अधिकारी थे । ऑफिस में दलित विरोधी अधिकारियों का राज था । फलतः उन्हें दो वर्ष के लिए हजारों किलोमीटर दूर गुजरात के गांधीधाम में जाकर अकेले रहना पड़ा । वहाँ के ऑफिस का छलछंद दिल्ली की अफसरशाही के जातिगत छलछंद से कतई अलग न था । यह छलछंद ऑफिस के अन्दर था और बाहर भी था । इस प्रकार अपने नौकरीकाल में अपनी मर्जी के मालिक वहीँ थे । उन्हें अपने बचपन, पढ़ाई और नौकरी करते समय उच्च जाति यानी सवर्णों का दंश बार-बार झेलना पड़ा था ।

दिल्ली में नौकरी करते समय सूरजपाल ने नोएडा में अपना स्थायी मकान बनाया । वहाँ पढ़े-लिखे, उच्च अधिकारीवर्ग उनके पड़ोसी थे । इनमें से अनेक दलित समाज के थे । नोएडा में उन्हें अपने पड़ोसी 'नोएडा स्कैन' के सदस्य उच्च दलितों के हाथों मानसिक पीड़ा और अपमान झेलना पड़ा था । यहाँ तक दिल्ली में रहनेवाले अपने ससुर के श्राद्धोत्सव में मदनलाल के हाथों अपमानित होना पड़ा था । मदनलाल से उन्हें चमार की औलाद जैसी गाली सुननी पड़ी थी । उच्च दलितों के बीच दलितों को किस प्रकार अवहेलित, निन्दित होना पड़ता था इसे लेखक ने अपनी आत्मकथा 'तिरस्कृत' में कई प्रसंगों के जरिये उपस्थापित किया है । पहले पहल लेखक सूरजपाल दिल्ली में सवर्ण रचनाकारों और बुद्धिजीवियों की साहित्यिक संगोष्ठियों से जुड़े रहते थे । अनेक साहित्यिक कार्यक्रमों, संगोष्ठियों आदि में भाग लेकर उन्हें महसूस हुआ कि वास्तव में ऐसी साहित्यिक गतिविधियों में सवर्णों का सबसे अधिक महत्व है तब धीरे-धीरे ऐसे कार्यक्रमों से सूरजपाल का संबंध टूटता गया । वे दलित साहित्यकारों के साहित्यिक कार्यक्रम से जुड़ने लगे । इसी क्रम में आप विशिष्ट दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि से जुड़े और आगे उनका पारिवारिक संबंध भी बढ़ता गया । लेखक सूरजपाल के द्वारा दलित साहित्य लिखे जाने पर कुछ लोग उन्हें दलित साहित्य जोड़ कर साहित्य की मुख्यधारा में शामिल होने को कहा । एक दिन लेखक ऑफिस से आ रहे थे । दिल्ली के बाराखंबा रोड स्थित 'स्टेट्समेन बस स्टैंड' पर कौशल ने लेखक से कहा - "सूरज जी, मैं तुम्हारा हितैषी हूँ, तुमने दलितों के विषय में बहुत कविताएँ व कहानियाँ लिखी हैं ... अब मैं चाहता हूँ कि आप अपनी संकुचित विचारधारा को छोड़ कर साहित्य की मुख्यधारा में आ जाओ । मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको सदबुद्धि दे ।" (तिरस्कृत -पृ. -82)

लेखक सूरजपाल की साहित्यिक भावना वस्तुतः दलितों तक सीमित नहीं थी । उनका चिंतन

और आदर्श वृहत्तर स्वार्थ से जुड़ा हुआ था । ऐसे तो दलित साहित्यकारों पर संकीर्णता का आरोप लगाने वाले साहित्यकार हर कहीं मिलते हैं । एक बार दिल्ली के 'मावलंकर हॉल' में एक कवि सम्मेलन हो रहा था । वहाँ सूरजपाल जी एक कविता पढ़ रहे थे । तब एटा-मैनपुरी से आये एक कवि ने मंच पर ही 'कवि से उनकी जाति पूछी तो कवि ने खींचते हुए उनसे कहा - "मैं भंगी हूँ, क्या परेशानी है तुझे ?" तब उन्होंने मुँह बिचकाता हुआ कहा - "लो, अब भंगी भी कविताएँ लिखने लगे ।"

(तिरस्कृत -पृ. - 123)

इस प्रकार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वारा आयोजित हिंदी साहित्य के नाम पर आयोजित कवि संगोष्ठियों में लेखक को कई बार कविता पढ़ने का सुअवसर मिला था । लेखक ने इस समय सामाजिक यथार्थ से जुड़ी हुई दलित रचनाएँ पढ़ी तो उनके लिए यहाँ के दरवाजे बंद हो गये । लेखक ने लिखा है - "जब इनके मंचों से अपनी भावपूर्ण दलित रचनाएँ पढ़नी शुरू कर दीं । मेरी रचनाओं को सुन-सुनकर ये सभी हैरान रहने लगे । इनमें से कई मुझे बहुत दिनों तक ऐसा सब मंचों से पढ़ने के लिए मनाते रहे । काव्य -गोष्ठियों में मेरी रचनाएँ सुनकर अब ये नाक-भौंह सिकुड़ने लगे । जब इन्होंने देखा कि मैं बदलनेवाला नहीं तो मुझे बुलाना ही बंद कर दिया, जिसकी मुझे पहले से ही संभावना थी ।" (तिरस्कृत -पृ. 108) लेखक ने अपनी आत्मकथा में दलितों को शोषण और उन पर सभी अन्याय - अत्याचारों का पर्दापाश तो किया है साथ ही दलितों की मुक्ति के लिए अनवरत प्रयास जारी रखा है ।

आजकल दलित समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा अपनी जाति को छुपाकर वृहत्तर समाज से स्वीकृति व प्रतिष्ठा पाना चाहता है । ऐसे लोग जाति को लेकर हीन ग्रंथि का शिकार हैं और इस ग्रंथि से उबरने के लिए वे जाति छुपा लेते हैं । वे लोग अपने आप को सवर्ण होने का आडम्बर करने लगते हैं । दलित दलितों की पीड़ा समझ नहीं पाता । तब तो ठाकुर लटूरी दलितों को लड़वा कर अपना उल्लू सीधा करता है । जब ठाकुर लटूरी के खेत में बेगार करने के लिए सुमेर, अपनी पत्नी का बीमारी के कारण जा नहीं पाता तो वह पंचायत में दलित से उसका अपमान करता है । पंचायत में खचेरा नामक दलित से उसको पिटवाता है । दलितों को दलितों के खिलाफ लड़वाकर ठाकुर अपना उल्लू सीधा करता है । वस्तुतः न्याय के नाम पर निर्दोष दलितों को सजा देकर उन्हें कैसे दबाया जाता है इसे बड़ी बारीकी से लेखक ने अपनी आत्मकथा में स्पष्ट किया है । दलितों में छुआछूत का भूत काफी गहरे तक ब्याप्त है । दलितों में भी जाति और उपजाति को लेकर कई भेद हैं । उच्च वर्ग के दलित निम्न वर्ग के दलितों को हीन दृष्टि से देखते हैं ।

जहाँ दलितों की मुक्ति की राह ढूँढी जाती है वहीं दलितों में सैकड़ों दरारें दिखती हैं । दलितों की एकता और सवर्णों के खिलाफ आवाज निष्प्रभ हो जाती है । इस संबंध में लेखक ने अपनी

आत्मकथा में लिखा है कि उनके पड़ोस के एक जाटव मित्र की पत्नी खाली समय में उनकी पत्नी के साथ बैठकर गर्पे करती थी । इन दिनों में घंटों बातें होती थी । एक दिन सवर्ण पड़ोसियों ने लेखक के जाटव मित्र की पत्नी से पूछा - “क्या आप भी शैड्यूल्ड कास्ट हैं ?” जाटव मित्र की पत्नी ने सीधे-सीधे उत्तर न देकर कहा - “ बहन जी, हम शैड्यूल्ड कास्ट तो हैं पर ऊँची जाति वाले शैड्यूल्ड कास्ट हैं ।” (तिरस्कृत -पृ. 195) इस प्रसंग से पता लग जाता है कि पढ़े लिखे असवर्ण दलितों में जाति, उपजाति को लेकर सवर्णों की तरह ऊँच-नीच की भावना में काफी भेद है । वस्तुतः दलितों की एकता में यह सबसे बड़ी बाधा है ।

सूरजपाल का पितृ -पितामह का संबंध फुसावली से था । दिल्ली में रहते हुए भी सूरजपाल पारिवारिक क्रिया कर्म, उत्सव -त्यौहारों में जोड़े हुए था । फुसावली की भंगी -चमार विरादरी में यद्यपि औरतें और पुरुषों के समान ही खटती थीं, लेकिन वर्चस्व पुरुषों का था । सूरजपाल के जीवन व्यवहार में वह साफ-साफ दिखाई देता था । बड़े भाई रोहनलाल की पत्नी की मृत्यु के बाद उन्होंने दूसरी शादी न कर अपने बच्चों का मुँह देख पूरा जीवन बिता दिया । अपने छोटे बड़े भाई-बहनों से उनके बच्चों से भी उनका बहुत लगाव था । एक अनुन्नत अनपढ़ परिवार में जन्मे रोशनलाल और सूरजपाल दोनों भाई फुसावली छोड़ कर दिल्ली आए थे । समय की गति के अनुसार दोनों परिवार दिल्ली में बस गए । दिल्ली में रोशनलाल और सूरजपाल के अलावा भाई सुपहरी लाल के बेटे भानु-मधुर और जयप्रकाश भी पढ़ लिखकर प्रतिष्ठित हुए । वे तीसरी पीढ़ी के थे । जयप्रकाश की पढ़ाई में सूरजपाल की आर्थिक सहायता उन्हें एम.बी. बी. एस बनाया और उसकी शादी प्रतिष्ठित घराने की बेटी से करायी । जैसे कामों में सूरजपाल और उनकी पत्नी बिमला की सहृदयता सदैव प्रशंसनीय है । लेखक ने अपनी आत्मकथा में पारिवारिक संबंध के सारे पहलुओं का बड़े विस्तार से वर्णन किया है । लेखक की पत्नी विमला और उनके बच्चों ने अपने घर को स्वर्ग बनाया था । विमला हर स्थिति में समझौता कर लेने वाली एक ऐसी आदर्श महिला है । जहाँ एक ओर वह पति के घर में पति की इज्जत और स्वाभिमान पर धब्बा लगने नहीं देती वहीं फुसावली में पारिवारिक संबंधों को कायम रखने में हमेशा तैयार रहती । अपने बच्चों के प्रति गहरी ममता और जेठ और दवरों के बच्चों से लगाव उनके व्यक्तित्व का एक उज्वल पक्ष है । लेखक ने अपनी आत्मकथा में अपने परिवार -रिश्तेदारों के प्रसंगों में बहुत सी अंतर्विरोधी बातें उपस्थापना की है । वस्तुतः सूरजपाल ने निजी आत्मकथा तिरस्कृत को दृष्टिकोणों को सार्वजनिक कर दलित आत्मकथा की परंपरा को आगे बढ़ाया है ।

3.2.3 दलित आत्मकथाएँ और तिरस्कृत

दलित साहित्य के विकास के साथ मराठी दलित साहित्यकारों ने सदियों की जातीयता को समाप्त करने के लिए आत्मकथाओं का सहारा लिया । आत्मकथा के जरिए दलित जाति के लोगों के दुःख-दर्द , कार्यों और विचारों पर प्रकाश डालना उनका मूल उद्देश्य रहा । “इन आत्मकथाओं की एक विशेषता यह भी है कि हर एक दलित जाति से किसी न किसी ने अपनी आत्मकथा लिखी है । इन आत्मकथाओं से महाराष्ट्र के हर क्षेत्र की भाव शैली, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, रहन-सहन आदि बातों की जानकारी मिलती है ।”

दलित जाति के आदिवासी, घुमन्त अर्द्ध घुमन्तु लोगों के नित्य के कार्यों और विचारों का चित्रण मिलता है । दया पवार का ‘बलुग’, लक्ष्मण माने का ‘उपरा’, माधव कोंडविलकर का ‘दवोचे गोठण’, मुरहरि राव का ‘गबाल’, ब्रजनाथ कलसे का ‘एरणी च धारणा’, उत्तम बंडुतुपे का काटमावरची ‘पोट’ शरणकुमार लिम्बाले का ‘अक्करमाशी’ आदि आत्मकथाएँ महार, मांग, डोर, चमार, कैकाड़ी, जोगी, लुहार, बंजारा, घुमन्तु आदिवासी दलित जातियों की स्थिति को व्यक्त करते हैं । इस प्रकार मराठी दलित साहित्य मराठी का अविभाज्य अंग हो गया है ।” (साक्षात्कार : श्री माता प्रसाद - दलित साहित्य के प्रतिमान, पृ. -309)

हिंदी में दलित आत्मकथाओं का अभाव । आजतक बहुत कम आत्मकथाएँ हिंदी में लिखी गई हैं । जो कुछ भी आत्मकथाएँ लिखी गई हैं उन पर मराठी आत्मकथा लिखने वालों के विचार, भाषा-शैली का प्रभाव देखने को मिलता है । इसलिए कुछ लोग हिंदी दलित आत्मकथा को मराठी की नकल मानते हैं ।

इस संदर्भ में डॉ. साहनलाल ‘सुमनाक्षर’ का विचार इस प्रकार है - “दया पवार कृत बतुल की तर्ज पर बहुत लोग आत्मकथा लिखने की कोशिश कर रहे हैं, परंतु इनमें वह वास्तविकता कहाँ है ? हिंदी में जिस तरह से दलित लेखक आत्मकथा लिखने की होड़ मचा रहे हैं, वह नकल मात्र है । अपने आप को उपहास बनाने की बात है । क्यों लोग हिंदी में मराठी की नकल पर दलित साहित्य का विकास करना चाह रहे हैं । (उद्धृत, दलित साहित्य के प्रतिमान, डॉ. एन. सिंह , पृ.-40) वस्तु: परंपरा की दृष्टि से यह कहना सच है कि हिंदी आत्मकथाओं का संबंध अम्बेडकर, दया पवार आदि मराठी दलित

आत्मकथाओं से है ।

हिंदी में सर्वप्रथम डॉ. भगवान दास की आत्मकथा 'मैं भंगी हूँ' प्रकाशित हुई । इसके बाद कई आत्मकथाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं । अब तक प्रकाशित हिंदी की दलित आत्मकथाओं में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाली तीन प्रमुख आत्मकथाएँ हैं - 'अपने -अपने पिंजरे' भाग -1 और भाग -2 (मोहनदास नैमिशयराय), 'जूठन' (ओमप्रकाश वाल्मीकि), और 'तिरस्कृत' (सूरजपाल चौहान) की कथाएँ हैं । इनके अलावा 'झोंपड़ी से राज भवन' (माता प्रसाद), 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' (श्री श्यौराज सिंह 'बेचैन'), 'मेरी पत्नी और भेड़िया' (डॉ. धर्मवीर), 'शिकंजे का दर्द' (सुशीला टाकभौरे) आदि आत्मकथाएँ भी पाठकीय आदृति प्राप्त कर चुकी हैं ।

दलितों की आत्मकथाओं में सवर्ण हिन्दुओं द्वारा दलितों के साथ किए जाने वाले अन्याय, अपमानजनक बर्ताव और छूआछूत की घृणित मानसिकता का वर्णन कर इनके खिलाफ पाठकों को सजग करने का प्रयत्न किया गया है । इन आत्मकथाओं में सूरजपाल चौहान की आत्मकथा 'तिरस्कृत' का एक अलग महत्व है । मोहनदास नैमिशयराय ने इस संबंध में कहा है - " 'तिरस्कृत' हिंदी हृदय से अपनी तीसरी दलित आत्मकथा है । इससे पूर्व 'अपने -अपने पिंजरे' और 'जूठन' आ चुकी हैं । पर 'तिरस्कृत' में अलग तरह का दृष्टिकोण पाठकों के सामने आता है । जो न केवल सवर्ण लेखकों को परेशान करता है, बल्कि बुद्धिजीवियों को भी यह सोचने पर बाध्य करता है कि ब्राह्मणवाद या ब्राह्मणवादियों से संयुक्त मोर्चा लेने के लिए एक ओर दलित जातियों के भीतर पनप रही श्रेष्ठ बने रहने की भावना और दूसरी तरफ अन्य को छोटा समझने के दोष को खत्म करना होगा ।" (दलित आत्मकथा -विशेष संदर्भ ; सूरजपाल चौहान कृत तिरस्कृत, पृ. -67)

दलित आत्मकथा यह सूचित करती है कि तत्कालीन सवर्ण जाति के लोगों से दलितों को कितना घृणित और अपमानित होना पड़ता है । सवर्णों के द्वारा उत्पीड़ित दलितों का जीना कितना दूभर होता था । इन सवर्णों के खिलाफ लड़ने के लिए दलितों में एकता होनी चाहिए । उल्टे दलितों में दरारें दिखाई देती हैं । इतना ही नहीं, पढ़े-लिखे सत्ताधारी दलित कमजोर दुर्गति संपन्न दलितों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं । लेखक ने खुद ही अपनी आत्मकथा 'तिरस्कृत' में इस बात का उल्लेख करते हुए कहा है - " देश के तथाकथित सवर्ण तो हमेशा से हमसे घृणा करते आ रहे हैं, पर हम दलित भी आपस में घृणा फैलाने में कम नहीं रहे हैं । उस दिन इन पढ़े-लिखे द्वारा साबित हो गया था कि छूआछूत का भूत दलित समाज में कितने गहरे तक व्याप्त है । मेरे पड़ोसी के एक जाटव मित्र की पत्नी खाली समय में श्रीमती के पास आकर बैठ जाया करती थी । वह घंटों बातें बनाती । हमारे सवर्ण पड़ोसियों ने एक बार उस जाटव मित्र की पत्नी से पूछा - "आप भी शैड्यूल्ट कास्य हैं ?" जाटव मित्र की पत्नी ने सीधे-सीधे उत्तर न देकर उस सवर्ण महिला श्रीमती कंसल से कहा था - " बहनजी, हम शैड्यूल्ट कास्ट तो हैं पर

ऊँची जाति वाले शैड्यूल्ड कास्ट हैं । ” (तिरस्कृत -पृ. -125)

दलितों के इस अंतविरोध को लेखक ने अन्य एक प्रसंग के जरिये स्पष्ट किया है लेखक जब नोएडा में रहने लगे तब 'स्कैल(शैड्यूल्ड कास्ट एसोसियेशन, नोएडा) से उनका संबंध हो गया । इस संस्था के अधिकांश सदस्य ऊँचे-ऊँचे पदों पर विराजमान अफसरान थे । संस्था का सदस्य बनने के लिए उन्हें एक फार्म भरना पड़ा । फार्म में एक कलम 'उपजाति' का भी था । उसने इस कालम की पूर्ति किये बिना छोड़ दिया । पर उन्हें इस कालम को पूरा करने के लिये कहा गया । तब लेखक ने फार्म में अपनी उपजाति 'बाल्मीकि' लिख दी । उस समय की स्थिति और उन लोगों की प्रतिक्रिया का रेखांकन करते हुए लेखक ने अपनी आत्मकथा में लिखा है -“ मैंने उपजाति वाले कालम में जैसे ही अपनी उपजाति वाल्मीकि लिखी कि वहाँ मौजूद सभी पढ़े-लिखे दलित एक - दूसरे के चेहरों की ओर कुछ क्षणों तक अपलक देखते रहे । कोई कुछ नहीं बोल रहा था - सन्नाटा, एकदम से, पिन ड्रॉप सायलेंस ।” लेखक भी ऐसी स्थिति में भौँचके रह गये । तभी संस्था के महासचिव डॉ. रथिन्द्र ने लेखक के कंधे पर हाथ रखते हुए हैरानी व्यक्त करते हुए कहा -“ अरे, हम किसी भी तरह की छूआछूत नहीं मानते ... हम अपने घर के आंगन में भंगिन तक को बैठाकर चाय व नाश्ता करवा देते हैं तुम बाल्मीकि हो तो क्या हुआ ?” यह जानकर कि मैं वाल्मीकि वर्ग से हूँ, उन लोगों का व्यवहार मेरे प्रति बदल चुका था ... उस दिन पढ़े लिखे धूर्तों द्वारा साबित हो गया था कि छूआछूत का भूत दलित समाज में कितने गहरे तक व्याप्त है ।” (तिरस्कृत - पृ. -) इससे पता चलता है कि दलितों में भी गहरा अंतर्विरोध है जो दलितों को एकजूट होकर आगे बढ़ने में प्रबल प्रतिरोधक बनता है ।

'तिरस्कृत' में अनुभूति की तीव्रता और प्रामाणिकता भी है । हिंदी में दलित साहित्यकारों की आत्मकथाओं में तिरस्कृत का एक अलग महत्व है । ओमप्रकाश बाल्मीकि और सूरजपाल चौहान दोनों ने अपनी अपनी आत्मकथा लिखी है । दोनों वाल्मीकि संप्रदाय के हैं । अपनी आत्मकथा के जरिये अनुसूचित जातियों के लोगों में जागरण उत्पन्न करने में दोनों सिद्धहस्त पाये जाते हैं । दोनों की आत्मकथा अनुभूति के आधार पर लिखी गई है । पर यह कहना असीमीचीन नहीं होगा कि दोनों की अनुभूति में थोड़ा बहुत अंतर है । ऐसे तो देखा जाना है कि वाल्मीकि संप्रदाय के लोग समाज में आर्थिक दृष्टि से बड़े कमजोर पाये जाते हैं । उनकी जीवनयात्रा की शैली भी उन्नत नहीं होती । वे लोग पुरानी परंपरा के अनुयायी हैं । दोनों लेखकों ने इनके जीवन की सारी गतिविधियों का सूक्ष्म निरीक्षण कर लिखा है । दोनों की आत्मकथाओं में कई स्थलों पर मार्मिक वर्णन देखने को मिलते हैं और ये भी दोनों की निजी अनुभूति की गहराई पर पर्यवेशित है । पर सच कहा जाय तो 'जूठन' की तुलना में 'तिरस्कृत' में वर्णन घटनाएँ ज्यादातर मार्मिक और अनुभूति की गहराई पर आधारित है । इस संबंध में कविदेत

‘इन्दु’ का विचार इस प्रकार है - “वाल्मीकि समुदाय के समाज का जितना जीवन्त और आत्मीय वर्णन तिरस्कृत में है वह अत्यंत दुर्लभ है । एक ओर जहाँ वे उस जीवन की विडंबनाओं का करुण वर्णन करते हैं, वहीं उसी में गुजारे गए अपने बचपन को भी बड़े लगाव और बिना लाग-लपेट के प्रस्तुत करते हैं । (दलित आत्मकथा, विशेष संदर्भ : सूरजपाल चौहान कृ तिरस्कृत -पृ. -58)

बचपन की बातों को याद करते हुए सूरजपाल ने अपनी आत्मकथा ‘तिरस्कृत’ में लिखा है - सूअर के मांस के छोटे-छोटे टुकड़े करते समय मांस काटने वाले बच्चों को सूअर की चर्बीयुक्त खाल जिसे तिकका कहते हैं, पकड़ा दिया करते थे । मौहल्ले के सभी बच्चे उन तिककों को गचर-गचर चबाते । मैं ... उन तिककों को मुँह में डाल बड़े स्वाद से चबाता । आज उन दिनों को याद कर मन घृणा से भर जाता है । सूअर का कच्चा मांस खाना कितना असभ्य और घिनौना कार्य है । दोनों हाथ और मुँह चर्बी से सने रहते थे । मुँह और हाथों पर असंख्य मक्खियाँ भिन भिनाती रहती थी । छी .. अब सोच - सोचकर उबकाई आने लगती है ।” (तिरस्कृत -पृ. -27)

माता प्रसाद द्वारा लिखी गई आत्मकथा ‘झोंपड़ी से राजभवन’ एक सशक्त आत्मकथा है । लेखक ने अपनी आत्मकथा के लिखने का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा है - “मेरे से निर्धन और दलित परिवार में पैदा हुए व्यक्ति जिसकी परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं थी, उसने भी कठिनाइयों को दूर करते हुए आगे की ओर कदम बढ़ाया है, इस पर मेरे मन में विचार आया है कि क्यों न अपने बारे में लिखूं ? इससे समाज के दलित, असहाय गरीब लोगों को प्रेरणा मिलेगी और उनमें उत्साह पैदा होगा । परिस्थितियों को मैंने भोगा है, उसे हमारे लड़के, पौत्र, पौत्रियों या दूसरे जाति के युवकों को हमेशा याद रखना चाहिए । अपनी जातीयता की हीन ग्रंथि में बाधित नहीं रखना चाहिए ”

(झोंपड़ी से राजभवन : माता प्रसाद, पृ. -50)

वस्तु: माताप्रसाद की अपनी इस आत्मकथा में दलित जीवन के खट्टे -मीठे अनुभवों का बखूबी चित्रण देखने को मिलता है । उन्होंने दलित समाज के कुछ ऐसे अधिकारियों के बारे में लिखा है जो अच्छे कमाते हैं, खाते-पीते हैं, केवल अपने परिवारवालों का ध्यान देते हैं । अपने जाति भाइयों के प्रति उनमें तनिक भी स्नेह-सहानुभूति देखने को नहीं मिलती । माता प्रसाद की इस आत्मकथा में लेखक की अनुभूति का मार्मिक चित्रण तो है पर इसका अंतिम भाग इतना प्रभावशाली नहीं बन पाया है । इस संबंध में डॉ. एन. सिंह का कहना है - “झोंपड़ी से राजभवन’ दलित जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों का अद्भुत चित्रण है, जो निचय ही हमारी आँखें खोलने वाला है, लेकिन इसका अंतिम हिस्सा राजभवन में अपने आप में डायरी जैसा हो गया है जिसमें दिनांक और घटनाओं का उल्लेख है । यदि यह भी विवरणात्मक की जगह सृजनात्मक हो पाता तो और भी अच्छा रहता । लेकिन इससे भी माताप्रसाद जी

के जीवन की कई ऐसी महत्वपूर्ण घटनाओं का पता चलता है, जो दलित समाज के लिए बहुत उपयोगी है, जैसे डॉ. अम्बेडकर का फिल्मी निर्माण के साथ जुड़ा घटनाक्रम ।”

(दलित साहित्य के प्रतिमान डॉ एन.सिंह, पृ. -189)

सूरजपाल चौहान की आत्मकथा ‘तिरस्कृत’ उनके बचपन से लेकर जवानी तक के विविध प्रसंगों पर आधारित है । किसी भी कवि की आत्मकथा जीवन के अंत तक की कथा को लेकर लिखी नहीं जा सकती । सन् 1955 सूरजपाल का जन्म है । जन्म के 8/10 सालों के बाद ही आत्मकथा लिखना प्रारंभ हुआ है । कुल मिलाकर 40 साल के आसपास कर अवधि में घटित घटनाओं पर उनकी आत्मकथा लिखी गई है । सूरजपाल की आत्मकथा ‘तिरस्कृत’ में दलित आत्मकथा की परंपरा में कुछ अभिनवता है । सूरजपाल के ‘तिरस्कृत’ में गांव और शहर दोनों को मिलाकर वर्णन किया गया है । बचपन में ग्रामीण जीवन की अनुभूति और नौकरी जीवन में शहरी जीवन की अनुभूति ने सूरजपाल को दलितों की त्रासदी के बहुविध रूपों से परिचय कराया है । इसलिए अन्य दलित आत्मकथाओं की तुलना में तिरस्कृत सबसे अधिक विवादास्पद और चर्चास्पद रहा ।

‘तिरस्कृत’ में जहाँ एक ओर ब्राह्मणों के द्वारा लेखक और उनके परिवार वर्गों, रिश्तेदारों के प्रति निष्ठुर व्यवहार दिखाई देता है वहीं दूसरी ओर पढ़े-लिखे समृद्ध उच्च वर्ग के दलितों से उपजातिवाले दलितों के प्रति अमानवीय व्यवहार का वर्णन भी है । दलितों में भी वर्ग भेद है । वस्तुतः दलितों के प्रति सवर्ण समाज के व्यवहार से प्रभावित उच्च जाति के दलितों में ऐसा विचार देखने को मिलता है । अगर दलितों में हमेशा अन्तर्विरोध रहेगा तो दलितों की मुक्ति कतई संभव नहीं है ।

सूरजपाल चौहान ने अपनी बाल्यावस्था की गहरी विडम्बना की त्रासदी स्थिति का बखूबी चित्रण किया है । यह उनकी गहरी आत्मानुभूति का परिणाम है । उनसे पूर्व लिखी गई दलित आत्मकथाओं में ऐसा हृदय विदारक चित्रण देखने को नहीं मिलता । इस संदर्भ में दयाशंकर ने ‘दलित आत्मकथाएँ, विशेष संदर्भ : तिरस्कृत’ शीर्षक लेख में लिखा है - “राधे लोधे की लड़की, ताऊ सरूपा की बेटी की शादी, नाना के साथ राजमाता की दावत, गेंदालाल की दूकान से लेत की खरीदी आदि फुसावली की घटनाओं में अपने अभावग्रस्त सामाजिक भेद भाव से विषाक्त बाल जीवन का, सबसे बड़ी बात उस साथ के भावों- विचारों और क्रिया व्यापारों का सूरजपाल ने जितना शिद्धत, सूक्ष्मता और स्वाभाविकता के साथ चित्रण और वर्णन किया है, वह रचनात्मकता का की दृष्टि से ‘तिरस्कृत’ को ‘अपने-अपने पिंजरे’ और ‘जूठन’ से आगे ले जाता है ।” (दलित आत्मकथा, विशेष संदर्भ : सूरजपाल चौहान कृत -तिरस्कृत , पृ. -88)

सूरजपाल अपनी आत्मकथा ‘तिरस्कृत’ का प्रारंभ अपने गांव से करते हैं । मां गांव में बीमार

है । यह समाचार पहुँचते ही पिता दिल्ली छोड़ कर गांव पहुँचते हैं । दिल्ली में रहते हुए भी पिता गांव के अंधविश्वास, पुरानी परंपरा से छुटकारा प्राप्त नहीं कर पाते । डाक्टरी इलाज किये बिना भक्तावल का आश्रय लेते हैं । भंगी समाज में प्रचलित परंपरा के अनुसार देवी-देवताओं की मनौतियाँ मानना, पूजा - पाठ करना, मुर्गे, बकरियों की भेंट चढ़ाना जैसे कामों में लगे रहे, पर मां स्वस्थ होने के बदले स्वर्ग सिंधार गई । मां की मृत्यु के बाद पिता के साथ सूरजपाल का दिल्ली चला जाना और वहाँ प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझते हुए पढ़ाई करना और बी.ए. पास करना जैसी विविध घटनाओं का विस्तृत विवरण 'तिरस्कृत' में देखने को मिलता है ।

लेखक ने Flash backstyle के सहारे बचपन की विविध घटनाओं का रेखांकन किया है । गांव में मां के साथ जूठन लाना, जूठन को धूप में सुखा कर भर पेट भोजन करना, शादी-ब्याह में सूअर को मार कर रसोई पकाना, फिर गांव में दलितों के अनैतिक काम में लिप्त रहने के विविध प्रसंगों की उपस्थापना, दलितों में लड़ाई-झगड़ा होना, दलितों पर सवर्ण वसिठों का अन्याय -अत्याचार और शोषण, उन्हें बेगार में काम करने को मजबूर करना जैसे विविध -प्रसंगों का बारीकी से वर्णन देखने को मिलता है । गांव के खेत -खलिहान, परिवेश, सामाजिक जीवन, आर्थिक विपन्नता का भी बखूबी चित्रण है । लेखक को जीवन के प्रारंभ से सवर्णों के द्वारा तिरस्कृत होना पड़ा है । गांव की पाठशाला से लेकर दिल्ली महानगरी में कॉलेज में अध्ययन करने तक प्रत्येक क्षेत्र में लेखक अपमानित हुए । इस विषय का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है - “ जाति का पुच्छला ब्रह्मराक्षस की तरह सदैव मेरे पीछे लगा रहा । संस्कृत विषय पढ़ाने वाले अध्यापक वेदपाल शर्मा मुझे समय-समय पर जाति का ओछापन याद दिलाते रहते । मैं तड़प उठता था उस द्रोणाचार्य की बात सुनकर । एक दिन अपने साथी अध्यापकों से मेरी ओर संकेत कर उसने कहा था - यदि देश के सारे चूहड़े -चमार पढ़-लिख गए तो गली-मोहल्लों की सफाई और जूते बनाने का कार्य कौन करेगा ?” (तिरस्कृत -पृ. -13)

अध्ययन की परसमाप्ति के उपरान्त नौकरी और साहित्य सभी क्षेत्रों में भंगी जाति का होने के कारण लेखक को मिले अपमान और उपेक्षा की पीड़ा को 'तिरस्कृत' में रेखांकित करने का सफल प्रयास किया गया है । भंगी जाति की त्रासद स्थिति का रेखांकन करने में लेखक तनिक भी विचलित नहीं हुए । उन्होंने अपने पारिवारिक और सामाजिक जीवन के यथार्थ के प्रत्येक पहलू का सूक्ष्म रेखांकन कर एक दलित आत्मकथाकार का सही परिचय प्रदान किया है । अपनी शिक्षा और योग्यता के अनुरूप सूरजपाल को नौकरी मिली । नौकरी मिलते ही उनके सामाजिक और पारिवारिक जीवन में काफी उन्नति हुई । वे समाज में प्रतिष्ठित माने गये । पर ऑफिस में सवर्ण अधिकारियों की हीन दृष्टि उन पर ज्यों की त्यों बनी रही । एक साहित्यकार के रूप में भी उन्हें सवर्ण साहित्यकारों के अपमान और लांछन सहना

पड़ा था । वे दलितों में जागरूकता उत्पन्न कर उनमें एकता स्थापित करना चाहते थे । पर यह संभव नहीं हो पाया । दलितों में ऊँच-नीच भेद था । ऊँच जाति के दलित निम्न वर्ग के दलितों को घृणा की दृष्टि से देखते थे । भंगी -चमारों के प्रति ऊच वर्ग के दलितों का मनोभाव दलितों की एकता में दरार उत्पन्न करने वाला एक बड़ा बाधक तत्व था । लेखक ने इस सामाजिक यथार्थ को पूरी तरह महसूस किया था । ‘तिरस्कृत’ जैसी दलित आत्मकथा अन्य किसी आत्म कथा में दलितों के जैसी आत्मकथा का रेखांकन प्रायशः देखने को नहीं मिलता है । इस दृष्टि से ‘तिरस्कृत’ एक अलग महत्व रखता है । हिंदी की पूर्व दलित आत्मकथाओं ने अपनी आत्मकथा लिखते समय ईमानदारी अवश्य दिखाई है, पर सूरजपाल की तरह ऐसा साहस दिखाकर, आत्मकथा लिख नहीं पाई । ‘तिरस्कृत’ के संबंध में अपना विचार व्यक्त करते हुए समीक्षक दयाशंकर का कहना है -“ हिंदी में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने हिंदी क्षेत्र के बाहर मराठी दलित समाज और कार्यकर्ताओं के जिस अंतर्विरोध का संकेत भर किया था, उनसे आगे बढ़कर सूरजपाल ने हिंदी दलित और साहित्यकार के जातिगत भितरी अंतर्विरोध का विस्तार से उद्घाटन किया है । इस प्रकार सूरजपाल ने हिंदी दलित आत्मकथा को वस्तु के लिहाज से न केवल समृद्ध किया, बल्कि ज्यादा साहस और गंभीर दायित्व के अहसास के साथ उसे दो कदम आगे भी बढ़ाया ।” (दलित आत्मकथा विशेष संदर्भ : सूरजपाल चौहान कृत ‘तिरस्कृत’ -पृ. -115)

इस प्रकार ‘तिरस्कृत’ एक तथ्यभित्तिक दलित आत्मकथा है । हिंदी में लिखी गई अन्य आत्मकथाओं की तुलना में इसका एक स्वतंत्र परिचय है ।
